ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 10 मई 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 10 मई 2015 से 16 मई 2015

ज्ये.कृ. 06 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 79, अंक 19, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

श्री पूनम सूरी, प्रधान डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति ने प्रधानमंत्री को 2 करोड़ रुपये का चैक प्रधानमंत्री राष्ट्रीय राहत-कोष के लिए भेंट किया

आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी जी के नेतृत्व में डी.ए.वी. के पदाधिकारियों का एक शिष्टमंडल प्रधानमंत्री, श्री नरेन्द्र मोदी जी से मिला और उन्हें प्रधानमंत्री राहत–कोष के लिए 2 करोड़ रुपये की राशि का एक चैक भेंट किया। डी.ए.वी के उद्देश्यों, लक्ष्यों और सरोकारों का परिचय देते हुए श्री सूरी जी ने मान्य प्रधानमंत्री जी को बताया कि 20 लाख छात्र–छात्राओं, 60 हजार अध्यापक–अध्यापिकाओं को लेकर 800 डी.ए.वी. संस्थाएं राष्ट्र की अनन्य सेवा कर रहे हैं। उन्होंने कहा पर्यावरण,

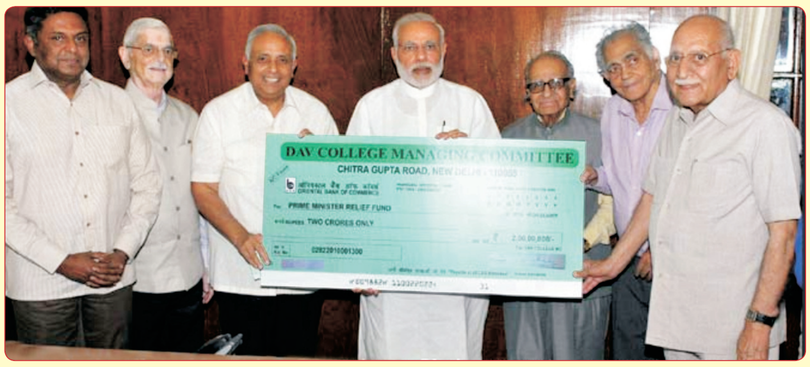

जल तथा स्वास्थ्य को लेकर डी.ए.वी. ने राष्ट्रव्यापी पौधारोपण, जल–संरक्षण तथा रक्त–दान अभियान चलाकर जन–जागरण की पहल की है।

प्राकृतिक आपदाओं तथा राष्ट्रीय सुरक्षा संकट उपस्थित होने पर डी.ए.वी. ने सहायता शिविरों तथा धन–संग्रह कर राष्ट्र का हाथ बंटाया है। इस दिशा में पर्यावरण बचाओ, जल–संरक्षण करो तथा मानव–जीवन बचाओ जैसे आन्दोलन चलाकर वृक्षारोपण, प्रोजेक्ट बूँद और रक्तदान सप्ताह मनाकर इन समस्याओं पर राष्ट्रीय चेतना जागृत की है। अपनी स्थापना से लेकर प्राकृतिक आपदा के क्षणों में कोयटा, गढ़वाल, कांगड़ा, राजस्थान, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तराखण्ड आदि स्थानों पर डी.ए.वी. ने तन–मन–धन से सेवा की है।

प्रधानमंत्री राहत कोष में 2 करोड़ रुपये की राशि देने पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मान्य प्रधानमंत्री जी ने छात्रों, अध्यापकों सहित डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति को आपना हार्दिक आशीर्वाद दिया।

सोलन में महात्मा हंसराज की 151वीं जयंती पर हुआ भव्य समारोह
प्रधानजी ने कहा 'डी.ए.वी. का हर शिक्षक हो धर्म शिक्षक'

सत्य और धर्म की राह पर चलकर ही विश्व में फहरा सकेंगे केसरिया ध्वज

डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के संयुक्त तत्त्वावधान में सोलन में 22 अप्रैल को आयोजित 'महात्मा हंसराज दिवस' के अवसर पर देश–भर से आए पांच हजार से अधिक पदाधिकारियों, निदेशकों, क्षेत्रीय निदेशकों, प्राचार्यों, अध्यापकों सहित आर्य नर–नारियों को सम्बोधित करते हुए डी.ए.वी. तथा प्रादेशिक सभा के प्रधान आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी ने महात्मा हंसराज के स्वप्नों को पूर्ण करने के लिए सत्य और धर्म की राह पर चलने का भावपूर्ण आह्वान किया। देश के मौजूदा हालात पर अपनी हार्दिक चिंता व्यक्त करते हुए मान्य प्रधानजी ने कहा–'देश का नैतिक ताना–बाना छिन्न–भिन्न हो चुका है। प्रतिदिन बुरे–से–बुरा समाचार पढ़ने और देखने को मिलते हैं। दूरदर्शन पर 'क्राइम रिपोर्टर' है 'इविल रिपोर्टर' है, पर आर्य समाज नहीं। आज आवश्यकता है हम

सब संगठित होकर ऋषि दयानन्द और महात्मा हंसराज के कार्यक्रम को फिर से उठायें। आइए, सब मिलकर संकल्प लें–हम आर्य बनेंगे, सत्य को धारण करेंगे, धर्म के मार्ग पर चलेंगे। ऐसा होने पर ही हम उनकी केसरी पताकाओं को विश्व में फहरा सकेंगे जिनसे आज सोलन नगर केसरी हो गया है।'

प्राचार्यों और शिक्षकों को महात्मा हंसराज के जीवन, उनके कार्यों और उद्देश्यों को धारण करने का आह्वान करते हुए प्रधानजी ने बताया कि इतिहास के प्रोफेसर होते हुए महात्मा हंसराज ने डी.ए.वी. कॉलेज के विद्यार्थियों को स्वयं धर्म–शिक्षा पढ़ाई। धर्म–शिक्षा को लेकर सामान्य लोगों में फैली भ्रान्ति का निवारण करते हुए श्री सूरीजी ने कहा 'धर्म–शिक्षा का अर्थ केवल वेदमंत्रों का पाठ नहीं, धर्म तो वह है जिसने हमें धारण कर रखा है और वह धर्म है सत्य।' डी.ए.वी. का हर शिक्षक सत्य का राही हो, सत्य पर आचरण करे और सत्य का प्रचार करे। इस रूप में डी.ए.वी. का हर शिक्षक धर्म–शिक्षक है। इससे पूर्व श्री सूरीजी ने स्वामी दयानन्द के अधूरे कार्यों के संकेत करते हुए महात्मा हंसराज के त्याग, समर्पण की सार्थकता को सि) किया।

लगभग एक घण्टे तक अपने मार्मिक उद्बोधन में मान्य प्रधानजी ने देश–भर में अपनी यात्राओं के बाद बनी इस धारणा को व्यक्त किया कि डी.ए.वी. के 'ब्रॉड' बनने की दिशा में 'महात्मा हंसराज दिवस', जो पहले केवल दिल्ली तक ही सीमित था, उसे देश के सभी राज्यों में आयोजित करना होगा। सोलन में इस

शेष पृष्ठ 12 पर ☞

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 10 मई, 2015 से 16 मई, 2015

जो अन्धे-लंगड़े को तारता है

●डॉ. रामनाथ वेदालंकार

अयं विप्राय दाशुषे, वाजाँ इयर्ति गोमतः।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे,
प्रान्धं श्रोणं च तारिषद् विवक्षसे।।

ऋग् १०.२५.११

ऋषिः **ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुको वसुकृद् वा** । देवता **सोमः** । छन्दः **आस्तारपंक्तिः** ।

● **(अयं)** यह [सोम प्रभु], **(दाशुषे)** विद्यादान करनेवाले, **(विप्राय)** ज्ञानी ब्राह्मण के लिए, **(गोमतः)** गौओं से युक्त, **(वाजान्)** अन्न, धन, बल आदि, **(इयर्ति)** प्रेरित करता है, प्रदान करता है, **(अयं)** यह, **(सप्तभ्यः)** [पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन–बुद्धि इन] सात ऋषियों के लिए, **(वरं)** वर, **(आ[इयर्ति])** प्रदान करता है [और], **(वः)** अपने, **(वि मदे)** विशेष मद में [आकर] **(अन्धं)** अन्धे को, **(श्रोणं च)** और लंगड़े को, **(प्र तारिषत्)** प्रकृष्ट रूप से तार देता है। [हे सोम !] तू, **(विवक्षसे)** महान् है।

● आओ, मित्रो! 'सोम' प्रभु की महिमा सुनो। सोम प्रभु जिसपर प्रसन्न हो जाता है, उसका कल्याण कर देता है। प्रसन्न वह उन्हीं पर होता है जो वर्णाश्रम–मर्यादा के अनुसार अपने कर्तव्य–पालन में संलग्न रहते हैं। वह विद्यदान करनेवाले ज्ञानी ब्राह्मण को धेनु, अन्न, धन, बल आदि प्रदान करता है। देखो, इन तपःपूत ज्ञानी ब्राह्मणों के अन्दर दिव्य गौएँ, अन्तःप्रकाश की दिव्य किरणें स्फुरित हो रही हैं, उसके अन्दर अदम्य आत्म–बल हिलोरें ले रहा है, बिना मांगे ही इन्हें गो–दुग्ध, अन्न, धन आदि अभीष्ट पदार्थ प्राप्त हो रहे हैं। यह सब इन्हें इनके विद्यादान के प्रतिफल में सोम प्रभु ने दिया है। इसी प्रकार वह स्व–स्व–कर्तव्य–निरत क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को उन–उनके योग्य ऐश्वर्य से सम्मानित कर कृतार्थ करता है। इसके अतिरिक्त सप्त–ऋषियों को वह वर प्रदान करता है। शरीर के अन्दर जो पंच–ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये सात ज्ञान के साधन निहित हैं ये ही सप्त–ऋषि हैं, इन्हें वह अभीष्ट वर–प्रदान से निहाल कर देता है। नेत्रों को दिव्य दृष्टि–शक्ति, श्रोत्रों को दिव्य श्रवण–शक्ति, रसना को दिव्य स्वादन–शक्ति, नासिका को दिव्य घ्राण–शक्ति, त्वचा को दिव्य स्पर्श–शक्ति, मन को दिव्य संकल्प–शक्ति, बुद्धि को दिव्य अध्यवसाय–शक्ति देकर कृतकृत्य कर देता है।

और भी उस सोम–प्रभु की लीला देखो। वह अन्धे और लंगड़े को भी तार देता है। अन्धे को आँखें देनेवाला, नेत्रहीन की प्रज्ञा–चक्षु देनेवाला, अज्ञानियों को ज्ञान–चक्षु देने वाला, अविवेकियों को विवेक की आँख देनेवाला वही है। वही लंगड़े को पैर प्रदान करता है, साधनहीन के भी समीप लक्ष्य–सिद्धि के साधन जुटा देता है। उसकी कृपा होने पर अन्धा चक्षुष्मान् से अधिक और विकल चरणवाला अविकल चरणवाले से अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है – **जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधरे को सब कछु दरसाई।** हे सोम! तुम महान् हो, सचमुच महान् हो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

महामन्त्र

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

पिछले अंक में बात हो रही थी कि मानव क्या है? क्या केवल कुछ भौतिक पदार्थों का सम्मिश्रण? भौतिक विज्ञान के पंडित कहते हैं कि मनुष्य लोहे, चूने, अभरक, गंधक, शीशा, चर्बी, नकम, खाण्ड, पानी तथा थोडी सी चांदी ही का संघात है। और कुछ भी नहीं। मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं। मानव को श्रेष्ठ कहा गया है।

मानव–देह पाकर यदि मनुष्य दुःखी हो तो फिर उसके कल्याण का क्या और भी कोई साधन हो सकता है? वेद का अनुयायी यही कहेगा कि मानव जीवन का कोई विशेज्ञ प्रयोजन है। तेरी आत्मा का इस शरीर के साथ किसने संबंध जोड़ा–उस परमात्मा ने। किस प्रयोजन के लिए (1) उस परमात्मा के भजन, दर्शन मिलाप के लिए (2) सत्यव्रत, यज्ञ, धर्म–प्रचार, शुभ गुण, विधाओ को धारण करने करने तथा (3) ज्ञान की उपलब्धि के लिए। जिनको पूरा करने के लिए मानव–देह प्रभु के पास से प्राप्त हुई। गायत्री इन तीनों का सार है क्योंकि इसके अंदर ज्ञान, कर्म, उपासना, तीनों ही तथ्य विद्यमान हैं।

हमारे पूर्वजों को वेद द्वारा ज्ञान प्राप्त होता था कि लोक के सारे वैभवों का मनुष्य आनन्द ले सकता है। आत्मा को मोक्ष का आनन्द भी प्राप्त करा सकता है। आज का मानव इसे नहीं जान पाया है। यही कारण है कि भू–लोक के किसी भी देश या प्रदेश में वास्तविक शिक्षा, संतोष और प्रसन्नता दिखाई नहीं देती। इसके विपरीत हा–हाकार, रुदन, अशिक्षा और तड़प ही दिखाई, सुनी जो सकती है।

अब आगे....

एक अमरीकन गंगोत्री में

पहली बार 1950 में जब मैं गंगोत्री गया और वहाँ योगनिकेतन की कुटिया में रहकर योगाभ्यास करने लगा, तो उन्हीं दिनों वहाँ अमरीका के एक अच्छे पठित पति–पत्नी पहुँचे। एक दिन वार्तालाप में दुनिया के दुःखी होने की बात चली तो मैंने अमरीकन सज्जन से पूछा कि हमने यह सुन रखा है कि अमरीका बड़ा धनी देश है, वहाँ वैज्ञानिक उन्नति भी बहुत हो गई है; मानव के सुख, आराम तथा ऐश्वर्य के हर प्रकार के साधन विद्यमान हैं; जितना सोना, आनन्द, दूध, कपड़ा, मोटरें, शानदार भवन अमरीका में हैं और कहीं भी नहीं; तब इतने सब–के–सब सुभीते, आराम के साधन छोड़कर आप गंगोत्री जैसे स्थान पर क्यों आए जहाँ न ठहरने का स्थान है, न बिजली है, न मोटर, न रेडियो, न कोलतार की सड़कें, न फल मिलते हैं, न शाक, न होटल हैं, न सिनेमा ? यहाँ तो केवल बीहड़ जंगल है देवदारु तथा भोजपत्र के वृक्षों का। कोई भी आराम का साधन यहाँ नहीं, तब आपको अमरीका–जैसे वैभवशाली देश से कौन–सी वस्तु इस तपोवन में खींच लाई?

मेरे प्रश्न के उत्तर में अमरीका महिला तो मुस्करा पड़ी और अमरीकन सज्जन ने बड़ी गंभीरता से एक लम्बा श्वास लेकर कहा– ठीक है कि अमरीका में सब–कुछ है, परन्तु वहाँ एक चीज नहीं। उसी को प्राप्त करने के लिए, उसी की खोज में अमरीका से निकलकर हम कठिन पैदल यात्रा करते गंगोत्री पहुँचे हैं और वह वस्तु जो वैभवशाली अमरीका में नहीं, परन्तु यहाँ मिली, उसका नाम 'शान्ति और आनन्द, है।

निस्सन्देह यह गौरव आज भी भारत ही को प्राप्त है कि वह अशान्त, दुःखी तड़पती हुई दुनिया को शान्ति और आनन्द का मार्ग दिखला सकता है।

भारत की आत्मा कभी दास नहीं हुई–

यह एक सत्य है कि पश्चिमी दुनिया के भौतिकवाद ने बहुत–से भारतीयों को भी पथभ्रष्ट कर दिया है। 'महाभारत' के भयंकर तथा सर्वनाश कर देनेवाले पाँच हज़ार वर्ष पहले के युद्ध ने भारत का भारी पतन किया। इतना पतन कि इसे एक हजार वर्ष विदेशियों का भी दास बनकर रहना पड़ा। पर भारत चाहे स्थूल रूप में दास बना रहा हो, इसकी आत्मा ने विदेशियों की दासता कभी स्वीकार नहीं की, और इसका कारण था इसकी वैदिक शिक्षा, इसके पूर्वजों का तप तथा इस काल में कभी हिमालय पर्वत की कन्दराओं में बैठे तपस्वियों, योगियों, गायत्रीविद् त्यागियों का मनोबल, जिसने भारत की आत्मा को भी नीचे नहीं गिरने

दिया, क्योंकि भारतवासियों के पूर्वज धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–मानव–जीवन के चारों स्वाद ले चुके थे और वे इस तथ्य को भली–भाँति जानते थे कि स्थूल शरीर आते और जाते हैं, परन्तु न आत्मा मरता है, न क्षीण होता और न दबाया जा सकता है। इसी अटल सत्य ने प्राचीन भारतवासियों को जहाँ वैभव का स्वामी बनाया, वहाँ आत्मिक आनन्द लूटने का भी अधिकारी बनाया।

हमें सारा भौगोलिक ज्ञान प्राप्त था–

हमारा इतिहास बतलाता है कि आर्यों ने हर प्रकार का भौगोलिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनका विज्ञान बहुत बढ़ चुका था। वे लोक–लोकान्तर की यात्रा करते थे। अन्य लोकवासियों से बातचीत करते थे। आयुर्वेद–शास्त्र के द्वारा वे मानव–शरीर को बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हजार दो सौ एक नाड़ियों का ज्ञान रखते थे। महर्षि दयानन्द ने पूना में व्याख्यान देते हुए अपने दसवें भाषण में अपने जीवन की एक घटना सुनाई कि एक बार अंग्रेज़ी का एक विद्वान् डॉक्टर मुझे मिला। उसने मुझसे कहा कि हमारे प्राचीन आर्य लोगों में डॉक्टरी औज़ारों का कुछ भी प्रचार न था और यह उन्हें विदित भी न था। तब मैंने सुश्रुत का 'नेत्र अध्याय' जिसमें कि बारीक–से–बारीक औज़ारों का वर्णन है, निकालकर उसे दिखाया। तब उसको पता चला कि आर्य लोग चिकित्सा में बड़े चतुर थे और उन्हें औज़ारों की विद्या भी भली–भाँति ज्ञात थी।

आर्य लोग गणित, ज्योतिष तथा ललितकला, सब कलाओं में पूरे निपुण थे। पारद से आकाश–मार्ग में चलनेवाला वायुयान तो बड़ा सुलभ था। सभ्यता के सारे ही पदार्थ उपस्थित थे, परन्तु कल और आज की सभ्यता के पदार्थों में भेद इतना ही था कि प्राचीन काल की सारी भौतिक उन्नति, सारे वैज्ञानिक आविष्कार तथा हर प्रकार का वैभव और भोग केवल शारीरिक सुख के लिए नहीं होता था, प्रत्युत आत्मकल्याण, यज्ञ, परोपकार तथा मानवता के उत्थान के लिए होता था, या यूँ कहिये कि स्वार्थ के लिए नहीं, परमार्थ के लिए होता था।

अब केवल शरीर रह गया है–

और आज की सारी भौतिक उन्नति, आविष्कार तथा वैभव केवल अपने स्वार्थ और शारीरिक सुख के लिए प्रयुक्त होते हैं। आज की दुनिया शरीर से आगे और दृश्यमान जगत् के आगे कुछ भी देखने की आँख नहीं रखती। प्राचीन आर्य इस दिखने वाली दुनिया के परे, स्थूल शरीर में बैठे सूक्ष्म शरीर को और उससे अत्यन्त सूक्ष्म तथा शक्तिशाली आत्मा को अपने दिव्य नेत्रों से देखते थे, और इस आत्मा से भी परे उस परमात्मा की महान् शक्ति का भी अनुभव और सक्षात् करते थे, जिसकी प्रेरणा से अरबों सूर्य, करोड़ों नक्षत्र, करोड़ों पृथिवियाँ ठीक नियम में बँधी नाच रही हैं। स्थूल जगत् के अतिरिक्त सूक्ष्म जगत् भी उनके सामने था, और वे समाधि तथा ध्यानावस्था की लैबोरिटरी में पहुँचकर प्रत्यक्ष देख चुके थे कि यह सारा दृश्यमान संसार केवल जीवात्मा के कल्याण के लिए है। तब वे भौतिक पदार्थों के पीछे पागल नहीं होते थे, जैसे आज अमरीका तथा रूस विशेष रूप से और अन्य देश साधारण रूप से पागल हो रहे हैं। ये सारे पदार्थ तो केवल साधन कहला सकते हैं, परन्तु अब इन्हें साध्य समझ लिया गया है।

धन कमाओ, परन्तु कैसे–

अब तो धन–दौलत ही प्रधान हो गया है। धन कोई बुरी वस्तु नहीं, परन्तु आजकल जिस ढंग से इसे कमाया जा रहा है और जिस ढंग से इसका व्यय किया जा रहा है, उससे धन कष्ट, क्लेश, विपदा, रोग तथा मृत्यु का कारण बन गया है। धन–उपार्जन त्याज्य नहीं है। वेद ने इसकी आज्ञा दी है।

ऋगवेद के पहले ही मण्डल के पहले के सूक्त की तीसरे मंत्र में परमात्मा यह आदेश देते हैं कि–

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे। यशसं वीरवत्तमम्।।

– मानव को चाहिए कि प्रकाशस्वरूप परमात्मा के साथ (प्रभु का स्मरण रखकर) धन को प्राप्त करे, जो दिन–प्रतिदिन पुष्टि देनेवाला हो, यशवाला हो, सबसे बढ़कर वीर (पुरुषों से युक्त हो। और आर्य लोग वेद के इस आदेश को समक्ष रखकर धन कमाते थे। तभी परमात्मा की कृपा उनके साथ रहती थी। उन्हें पुष्टि मिलती, यश–कीर्ति मिलती, वीर पुत्र प्राप्त होते और सब प्रकार के वैभव उनके पग चूमते थे। धन को कमाकर फिर उसे व्यय किया जाता था। वेद ने स्पष्ट आज्ञा दी है–

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर। अथर्व. 3।24।5।।

–सैकड़ों हाथों से इकठ्ठा करो, हज़ारो हाथों से बाँटों

क्योंकि धन कमाकर धन बाँटने वाले अमर हो जाते हैं। ऋगवेद भगवान् ने स्वयं कहा है–

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते। ऋ. 1।125।6।।

–दानी अमर पद पाते हैं।

और साथ ही धन कमाने वालों को सावधान किया है कि–

मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। यजु. 40।1।।

लोभ न कर, मत ललचा–यह धन किसी का नहीं रहा। इसके लिए मनु भगवान् ने एक सिद्धान्त निर्धारित किया–

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।

योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।

सारी पवित्रताओं में से कमाई की पवित्रता सबसे उत्तम मानी है। जो कमाई से पवित्र है, वह पवित्र है। मिट्टी और जल से पवित्र, पवित्र नहीं। जब लोभ मर्यादा से बढ़ जाता है, तब कमाई या धन अपवित्र हो जाता है। नदी तब तक ही लाभ पहुँचाती है जब तक वह अपने किनारों की मर्यादा के अन्दर रहती है जब वह किनारों से उछलकर बाहर आ जाती है तो बस्तियों तथा खेतियों को नष्ट कर देती है। इसी प्रकार धन कमाने में मर्यादित लोभ तो ठीक है, परन्तु जब लोभ की नदी उछल पड़ी– जैसे कि आजकल पूरे तूफ़ान में आ चुकी है– तो सर्वनाश कर देती है।

–तब धन कमाने की मर्यादा है क्या? उत्तर में बतलाया है

अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खलनम्रताम्।

असंत्यज्य सतां वर्त्म यत् स्वल्पं तद् वै बहुः।

–किसी को सन्ताप न देकर (पराया हक न दबाकर, धोखा न देकर, रिश्वत न लेकर, डाका–चोरी न करके), दुर्जनों के आगे नम्र न होकर और सत्पुरुषों के मार्ग को न त्यागकर जो थोड़ा भी प्राप्त हो वही बहुत है।

धन के लिए चरित्र न बेचो–

परन्तु आजकल की अवस्था देखकर तो यही कहा जायेगा कि इस समय ऐसे उपदेश काम नहीं आ सकते। बहुधा लोग यही कहते सुनाई देते हैं कि 'आजकल तो झूठ, फरेब, रिश्वत के बिना दो पग चलना भी कठिन हो रहा है।' इसमें कुछ सत्य भी है। निःसन्देह यह ठीक है कि आजकल परिस्थितियाँ बिगड़ गई हैं, मानसिक विचार उथल–पुथल हो चुके हैं, नैतिकता का मोल रह नहीं गया, धन सब पर छा गया है, इस धन के लिए गुलामी भी खरीद ली जाती है, देश बेच डाले जाते हैं और देवियों के सतीत्व भी बाजार में बिकते दिखलाई देते हैं। परन्तु अच्छे कुल की कोई भी देवी किसी वेश्या के चमकीले आभूषणों से ललचाकर वेश्यावृत्ति ग्रहण नहीं करती। भूखों मर जाना उसे प्रिय लगता है, परन्तु वित्त (धन) के लिए वृत्त (चरित्र) को नहीं बेचती, क्योंकि वेद के अनुसार यह आदेश मिला हुआ है–

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्, वित्तमेति च याति च।

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु पतो हतः ।।

–वृत्त (सदाचार) की यत्न से रक्षा करें; धन तो आता है और जाता है। धन से क्षीण व्यक्ति क्षीण नहीं, पर वृत्त से गिरा हुआ तो मर ही चुका है।

'महाभारत' के उद्योग–पर्व में यह व्यवस्था दी है–

वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया ।म. उ. 89 ।।

वृत्त (आचरण) से ही आर्य होता है; न धन से, न विद्या से।।

शेष अगले अंक में....

वैदिक प्रार्थना

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा।। यजु. 19.39

I need cleansing and purification
of thoughts and actions
I have many failings and weaknesses
May the Enlightened One help me
cleanse and purify
my body and soul,
my mind and intellect,
my words and actions.
O Lord, make me pious and pure.

दोष मुझमें ढेर होंगे;
देवजन, ज्ञानी तपस्वी झाड़ पोंछ पवित्रा कर दें
मुझे; मेरी बुद्धि, मेरा मन तथा सब कर्म मेरे
शुत्रु और पवित्रा होवें।
अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी,
वायु, जिनसे यह बना है देह मेरा, करें निर्मल !
और प्रभु सर्वज्ञ तुम भी कलुष सब मेरे हटा कर
मुझे पूर्ण पवित्र कर दो!

''अनादि काल से सर्वव्यापक परमेश्वर का वैज्ञानिक नियम सृष्टियों में व्याप्त है''

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

जिन ईश्वरीय रचनाओं को देखकर वैज्ञानिकों का विज्ञान बनता है उस विधाता को वैज्ञानिकों ने अभी पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया है। क्या कोई अपने जन्मदाता को अस्वीकार कर सकता है? किन्तु वैज्ञानिकों की बुद्धि बहुत काफी है, इसलिये जो नहीं दिखता उसे स्वीकार नहीं करते किन्तु जो नियम तत्वों के संयोग–वियोग से बन रहे हैं जैसे–ताप, वायु और सागर आदि से (ये सब किसी वैज्ञानिकों के कारखाने से उत्पन्न नहीं हुए) बादलों का बनना, उनसे बिजली का उत्पन्न होना, समुद्र का जल बादलों में फिल्टर होकर वृष्टि का होना। भूगर्भ में कोयला, तेल, गैस और विभिन्न प्रकार के रत्न एवं धातुओं का परिवर्तन द्वारा बनना (मानव उपकार के लिये) यह तमाम नियम एवं क्रिया का प्रकृति में होना बिना नियामक के संभव नहीं है। वैज्ञानिकों की मशीन भी अपने आप नहीं चल सकती जब तक उसका बटन नहीं दबाया जाता।

ब्रह्माण्ड में यह सौर जगत् एक परिवार है। ईश्वर की बड़ी सोची समझी महान रचना है, यह सत्, रज और तम के विभिन्न प्रकार के परमाणुओं के समूहों से अनेक रूप, रंग, आकार–प्रकार के पृथिवी से लेकर सूर्य चन्द्रादि तक की उत्पत्ति हुई है। सबका परिमाण एक समान नहीं है। इन लोकों में पृथिवी एक अन्यतम सृष्टि है। पांच सूक्ष्म भूतों से जीवन उपयोगी पांच महाभूतों की (शतपथ ब्रा. के अनुसार) ईश्वर ने सर्वप्रथम उत्पत्ति की थी, इसलिये यही विश्व सागर, वृक्ष–वनस्पतियों के पहाड़ों से पूर्ण के पश्चात् सारे प्राणी सर्वप्रथम अमैथुनी तरीकों से उत्पन्न हुए। उसके पश्चात मैथुनी नियम से सब उत्पन्न होने लगे।

सूर्य चन्द्रादि ये जितने लोक हैं, सब वस्तु हैं, ये बसने और परस्पर बसाने योग्य होते हैं। परमेश्वर ने इस प्राणी जगत से पूर्ण विश्व की उत्पत्ति सर्वप्रथम कब की, कैसे की, क्यों की कोई नहीं जानता। ये जितने बृहस्पति आदि लोक हैं सब इस 'सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्' संसार के बराबर रक्षक बने रहते हैं क्योंकि अन्तरिक्ष से आने वाले अल्काओं को अपने विराट गुरुत्वाकर्षण से रोक लेते हैं जिससे यह विश्व सुरक्षित रहता है। अब सबसे बड़ा प्रश्न है कि प्राणी उत्पत्ति के पूर्व, सृष्टि की आदि में वृक्ष–वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई कैसे? हमारे विचार से पहले छोटे–बड़े तृण उत्पन्न हुए, उसके पश्चात छोटे–छोटे प्राणी जल–स्थल में अनेक प्रकार के रासायनिक उपादानों के मिश्रण तथा सूर्य के प्रकाश एवं चन्द्रमा के प्रभाव से उत्पन्न होने लगे। फिर सैकड़ों वर्षों पश्चात् 'रज–वीर्य' जैसे मूल तत्वों से बने उपादानों के योग से गर्भ जैसे झिल्लियों से पशु और उन्हीं तत्वों से बने अण्डदानियों से विभिन्न प्रकार अण्डज प्राणी तथा पक्षियों की उत्पत्ति होने लगी और वे फलाहारी प्राणी वनस्पतियों के फलों एवं उनके बीजों को खाकर जो विष्टा किये वे सब गोबर जैसे कीचड़ों में गिरने लगे, और उनमें अन्दरूनी परिवर्तनों के द्वारा अनेक प्रकार के वृक्ष उत्पन्न होने लगे। इस प्रकार उनके बीजों से पुनः वृक्षों की वृद्धि होने लगी। जैसे बिना माता–पिता के अमैथुनी सृष्टि काल में मानवों की उत्पत्ति हुई थी, वैसे ही मानव एवं अन्य प्राणियों की उत्पत्ति के पूर्व आदिकाल में वनस्पतियों की भी उत्पत्ति बिना बीज के हुई थी।

आदि सृष्टि में अमैथुनी तरीके से उत्पन्न होने वाले स्त्री–पुरुष बाल्य अवस्था से ही कुछ देव तुल्य हुए थे। उनका रूप–रंग, स्वभाव–विचार भिन्न–भिन्न था। परन्तु उस समय उनमें जो स्वाभाविक ज्ञान के अलावा उच्च विचार के थे, उन्हीं अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा पुण्यात्मा के ध्यान के योग मुद्रा में सबको नैमित्तिक ज्ञान देने के लिये ही दैवी शक्ति सरस्वती के द्वारा वेद–विद्या एवं उसकी वैदिक भाषा की भी सृष्टि छन्दों के माध्यम से उन्हें प्राप्त होने लगी। परमेश्वर ने जैसे अपनी सारी सृष्टि बुद्धिपूर्वक नियमों से बनायी वैसे ही उन आदि ऋषियों को भी वेद एवं वैदिक भाषा देकर सर्वश्रेष्ठ बना दिया, ताकि सभी को नैमित्तिक ज्ञान प्राप्त हो सके। उस समय ऋषियों से सम्बन्धित विशुद्ध आर्यों का एक समाज था जो लोग उन ऋषियों आर्यों के ज्ञानोपदेश एवं संस्कार को नहीं अपनाते थे उन्हें एक विशेष नाम से जाति बहिष्कार कर दिया जाता था इसलिये लड़ाई बखेड़ा करके उन नामों के साथ देश से बाहर विभिन्न स्थानों में चले गये। उन देशों के नाम वही रक्खे जिन नामों से उन्हें समाज से बाहर कर दिया गया था।

उस समय कतिपय ऋषि मानसरोवर आदि स्थानों में रहने लगे और कुछ ऋषि तथा आर्य लोग इसी आर्यावर्त्त में आकर बसे। विन्ध्य, हिमाचल, गंगा, यमुना, सरस्वती और ब्रह्मपुत्र आदि के (नामकरण प्राचीन ऋषियों ने किए थे) अन्तर्गत जितने देश–प्रदेश हैं— इन सबको आर्यावर्त्त इसलिये कहते हैं क्योंकि इन्हें आर्य विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से यह आर्यावर्त्त कहलाया। अतः उन्हीं आर्यों ने— ग्रामों, खेतों, कूपों, मार्गों और पशुओं का विकास किया और इस देश को अन्न, फल, मूल, कन्द से उपजाऊ बनाया।

इसके अलावा इसके पूर्वकाल में जो आर्यों से पृथक हुए उनमें से जो कोल, भील, संथाल आदि थे वे सब इसी आर्यावर्त्त देश के अरण्यों में वास करने लगे। तात्पर्य यह कि आर्यों के इस आर्यावर्त्त में प्रवेश के पहले यहाँ कोई नहीं बसता था, इसलिये इस भारत देश को आर्यों एवं ऋषियों की पुण्य भूमि कहा जाता है।

आदि में दैव्य ऋषियों से वेद विद्या ब्रह्मादि ऋषियों को प्राप्ति के पश्चात वह वेद श्रुति रूप में, श्रुत ऋषियों द्वारा चलने लगा। उसके पश्चात ऋषियों ने वेदों को समझने के लिए 'वेदांग' को रचा। ये छः हैं— शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। ये वेदों के गूढ़ एवं रहस्यमय अर्थों को स्पष्ट करने में सहायता करते हैं। सर्वप्रथम उपवेद की रचना हुई, उसके पश्चात वेदांग। उसके पश्चात् उपांग जिसमें छः ऋषियों के छः प्रकार के दर्शन शास्त्र हैं। उसके बाद 'ब्राह्मण ग्रन्थ और अंत में उपनिषदों की ऋषियों ने रचना की और स्मृति ग्रन्थ वेदों में पारंगत ऋषियों–मुनियों की रचना हैं।

वृक्ष वनस्पतियों के सम्बन्ध में हमारे पास कोई प्रमाण तो नहीं है, किन्तु मेरा जहाँ तक अनुमान है कि बहुत से वृक्ष, अन्न एवं फलों के बीजों को ऋषि वैज्ञानिकों ने कृत्रिम तरीकों से निर्माण किया होगा, नहीं तो वे कैसे उत्पन्न हुए?

अब प्रलय–महाप्रलय का जहाँ तक प्रश्न है? तो इसका उत्तर यही है कि जब ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं, तो प्रलय अथवा महाप्रलय सारे विश्व का एक साथ नहीं होता। हाँ, जहाँ–जहाँ तक प्रलय होती है वहाँ वहाँ से पुनः नये तरीके से सृष्टि आरम्भ होने लगती है। वेद में तो **''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम् कल्पयत। दिवंच पृथिवीचान्तरिक्षमभोस्वः।।** (ऋग्वेद) धाता परमेश्वर ने सूर्य और चन्द्रमा को पूर्व सृष्टि के समान बनाया। द्यु–पृथिवी और अन्तरिक्ष और स्वर्ग अर्थात् मुक्त पुरुषों के लिए आनन्द लोक को भी रचा। (हमारे विचार से आनन्द लोक में विभिन्न प्रकार की ईश्वरीय ज्योतियों के दर्शन होते हैं) वह भौतिक आनन्द नहीं है, एक अन्यतम प्रकार का सुख है।

ईश्वर ने इन विभिन्न प्रकार की सृष्टियों की रचना केवल अनेक प्रकार के प्राणियों का जन्म तथा मानव को सुख–दुःख भोगने के लिये नहीं किया। इन बुद्धिपूर्वक रचनाओं के अनेक कारण हैं। यदि जीवन उपयोगी पंचतत्वों को परमेश्वर न बनाता, और मानव को पैदा न किया होता और उसे स्वाभाविक ज्ञान के पश्चात नैमित्तिक ज्ञान के लिए ऋषियों ने वेदादि के द्वारा भाषा के साथ उस ज्ञान को न दिया होता तो कोई कैसे जान सकता कि इन तमाम सृष्टियों का रचनाकार कौन है?

ईश्वर प्रदत्त सृष्टियों में अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियाँ कार्य कर रही हैं।

यह शरीर जड़ है, इसके सारे उपकरण जड़ हैं। किन्तु इसमें ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के बाहर–भीतर के जितने उपकरण बने हैं, सब बुद्धिपूर्वक सोच के अनुसार बने हैं, तभी तो मनुष्य जो भोजन करता है, वह प्राणों के द्वारा–रस, रक्त, मज्जा आदि बन रहे हैं और उसी के द्वारा अन्दर के यंत्र चालू रहते, जिनसे एक तरफ मल–मूत्रादि भी निकल रहे हैं। मनुष्य देखता है, सुनता है, बोलता है, स्पर्श का अनुभव करता है, सोचता है, विचार करता है, ये सारे कार्य प्राण के माध्यम से हो रहे हैं और प्राणशक्ति एक जीवित शरीर में ही क्रिया करती है किन्तु बिना जीवात्मा के न शरीर में प्राण क्रिया कर सकता है न यह शरीर जीवित रह सकता है।

कतिपय वैज्ञानिक जन आत्मा और ईश्वर को नहीं मानते। वह इसलिए कि उनका अस्तित्व उन्हें दिखता नहीं है। चैतन्यता को मस्तिष्क की उपज मानते हैं। उन लोगों से मेरा निवेदन है कि मानव उत्पत्ति के पूर्व सर्वप्रथम मानव शरीर के डिजाइन एवं मस्तिष्क तन्तुओं तथा सेलों की रचना क्या जड़ ने स्वयं निर्माण कर लिया? क्या मोबाइल और कम्प्यूटर में जितने इलेक्ट्रोनिक उपकरण लगे हैं वे भी सब बुद्धिपूर्वक अपने आप आकर सब जुट गये हैं। जब ये सब यन्त्र अपने आप नहीं बने तो मस्तिष्क के स्नायु और सेल कैसे अपने आप बन सकते हैं?

इसलिये चैतन्यता मस्तिष्क की उपज नहीं है। ईश्वरीय नियम ने मस्तिष्क के तन्तुओं को इस लायक बना दिया है (जिससे धाता परमेश्वर नहीं सोचता, पर उन बनाये गये साधनों से आत्मा=मानव सोचता है)

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● **स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक**

शंका– 'कारण–शरीर' और 'सूक्ष्म–शरीर' कैसे बनते हैं? और आत्मा के साथ इनका सम्बन्ध कब तक रहता है?

समाधान–

● **कारण शरीर "प्रकृति" का नाम है।** सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, इन तीनों के समुदाय का नाम प्रकृति है। ये सूक्ष्मतम कण हैं। उसी का नाम 'कारण–शरीर' है।

● अब उस **प्रकृति रूपी कारण शरीर से दूसरा जो शरीर उत्पन्न हुआ, उसका नाम 'सूक्ष्म शरीर' है।** आपने शरीर पर सूती कुर्ता (कपड़ा) पहन रखा है। इसका कारण है धागा। और धागे का कारण है– रूई। रूई, धागा और कॉटन–कुर्ता ये तीन वस्तु हो गयीं। कुर्ता, धागा और रूई, तो ऐसे तीन शरीर हैं– स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। **स्थूल शरीर है कुर्ता, सूक्ष्म शरीर है धागा, और कारण शरीर है– रूई।**

● जो संबंध कुर्ते, धागे और रूई में है, वो ही संबंध इन तीनों शरीर में है। क्या रूई के बिना धागा बन जायेगा, और क्या धागे के बिना कुर्ता बनेगा? कारण शरीर के बिना सूक्ष्म शरीर नहीं बनेगा। सूक्ष्म शरीर के बिना स्थूल शरीर नहीं बनेगा। कहा है:– **कारण शरीर प्रकृति सत्त्वरजसतमः।** सत्त्व, रज और तम से अठारह चीजें बनीं। उसका नाम है– सूक्ष्म शरीर।

● **सृष्टि के आरंभ में जब भगवान ने ये सारी दुनिया बनायी तो कारण शरीर प्रकृति से अठारह पदार्थ उत्पन्न किये। उनके नाम हैं– बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच ज्ञान–इन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा।** इनका नाम सूक्ष्म शरीर है। ये सारे पदार्थ प्रकृति से बनते हैं। **रूप, रस, गंध आदि पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत बनते है। जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि, आकाश, इन पाँच महाभूतों के नाम है। इन्हीं पाँच पदार्थों का समुदाय ये स्थूल शरीर हैं।** जो आपको आँख से दिखता है, वो स्थूल रूप। तो ये इन तीन का संबंध है।

● जब तक जीवात्मा पुनर्जन्म धारण करेगा, यानी एक शरीर छोड़ दिया, दूसरा शरीर धारण कर लिया, तो स्थूल शरीर छूट जायेगा। अतः मृत्यु होने पर ये छूट जायेगा। सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर, ये दोनों जीवात्मा के साथ जुड़े रहेंगे। पुर्नजन्म हुआ फिर नया स्थूल शरीर मिल गया, फिर अगला शरीर, फिर अगला। जब तक मुक्ति नहीं होगी तब तक सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर साथ रहेगा। जब मुक्ति हो जायेगी तब तीनों शरीर छूट जायेंगे। धागा वही रहता है, कुर्ते बदलते रहते हैं।

● **सूक्ष्म–शरीरऔरकारण–शरीर तब तक साथ रहेंगे, जब तक पुनर्जन्म होता रहेगा। जब मोक्ष हो जायेगा तब तीनों दूर हो जायेंगे। अथवा मोक्ष नहीं हुआ और आ गई प्रलय तो प्रलय में तीनों शरीर छूट जायेगा।** स्थूल शरीर तो वैसे ही थोड़े–थोड़े दिनों में छूटते रहता है। तब सूक्ष्म शरीर भी टूट–फूट कर नष्ट हो जायेगा और कारण शरीर रूपी प्रकृति बचेगी। सूक्ष्म शरीर वापस टूट–फूट कर कारण शरीर के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। जैसे मिट्टी का हमने ढेला लिया और उसकी ईंट पका ली और फिर ईंट तोड़कर वापस मिट्टी बना दी, तो वापस ये मिट्टी बन गई यानी कारण शरीर बन गया। जीवात्मा प्रलय के समय तो अलग हो गया पर मुक्ति नहीं मिली। फिर एक नयी सृष्टि बनेगी, तो उसके साथ जीवात्मा को ईश्वर फिर दोबारा जोड़ देगा। तब तक वह बंधन की स्थिति में है। जब तक मोक्ष न हो जाये अथवा प्रलय न हो जाये तब तक ये दोनों शरीर आत्मा के साथ जुड़े रहेंगे। मोक्ष में या प्रलय में ये छूट जायेंगे। मोक्ष होने पर तो फिर हजारों सृष्टियों तक ये तीनों शरीर फिर जुड़ते नहीं हैं।

> **अब रही बात राग और द्वेष की। राग और द्वेष भी जीवात्मा की शक्ति है। राग और द्वेष दो प्रकार का है:– एक स्वाभाविक और दूसरा नैमित्तिक। जो स्वाभाविक राग–द्वेष है, वो जीवात्मा से नहीं छूटेगा। वो मुक्ति में भी जीवात्मा में रहेगा। और स्वाभाविक राग–द्वेष में रहते–रहते मुक्ति हो जायेगी। इसमें कोई आपत्ति नहीं है, कोई बाधा नहीं है। जो नैमित्तिक राग–द्वेष है, वो बाधक है। उसे हटाना पड़ेगा, मुक्ति में वो छूट जायेगा।**

● अब रही बात राग और द्वेष की। **राग और द्वेष भी जीवात्मा की शक्ति है।** राग और द्वेष दो प्रकार का है:– एक स्वाभाविक और दूसरा नैमित्तिक। जो स्वाभाविक राग–द्वेष है, वो जीवात्मा से नहीं छूटेगा। वो मुक्ति में भी जीवात्मा में रहेगा। और स्वाभाविक राग–द्वेष में रहते–रहते मुक्ति हो जायेगी। इसमें कोई आपत्ति नहीं है, कोई बाधा नहीं है। जो नैमित्तिक राग–द्वेष है, वो बाधक है। उसे हटाना पड़ेगा, मुक्ति में वो छूट जायेगा।

● स्वाभाविक राग–द्वेष क्या है? और नैमित्तिक राग–द्वेष क्या है? उत्तर है कि **जीवात्मा को हमेशा सुख चाहिये।** यह उसको सूक्ष्म राग है। **ये स्वाभाविक राग है।** ये मुक्ति में बाधक नहीं है। **जीवात्मा को दुःख कभी भी नहीं चाहिये। दुःख में उसको स्वाभाविक द्वेष है।** ये भी मुक्ति में बाधक नहीं। ये स्वाभाविक राग और द्वेष रहेंगे, मुक्ति हो जायेगी। कोई परवाह नहीं।

● अमुक व्यक्ति ने मेरी हानि कर दी, मैं उसकी गर्दन तोड़ूँगा, ये सोचना नैमित्तिक द्वेष है। खीर, पूड़ी, लड्डू, हलवा मुझे मिलना चाहिये, मुझे अधिक मिलना चाहिये, उसको कम, ये सोच नैमित्तिक राग है। ये मुक्ति में बाधक है। ये हट जायेगा, फिर मुक्ति होगी। इसके रहते मुक्ति नहीं होगी। इसको छोड़ देंगे तो मुक्ति हो जायेगी।

शंका– क्या कोई आत्मा अन्य आत्मा में प्रवेश कर उस जीवात्मा को प्रभावित करके सता सकता है? क्या मृत शरीर में अन्य आत्मा घुस सकता है?

समाधान– इसका उत्तर है– नहीं। ये भूत–प्रेत (घोस्ट) की मान्यता बिल्कुल गलत है।

● किसी जीवित शरीर में कोई आत्मा, भूत–प्रेत बनकर घुस जाये और उसको परेशान करे, ऐसा कभी नहीं हो सकता। किसी मृत शरीर में कोई आत्मा घुस जाए और वो शरीर चल पड़े और सारे काम शुरू कर दे, ऐसा भी नहीं हो सकता।

● कभी–कभी मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति अस्वाभाविक क्रियाएं करने लगते हैं। जो आत्मा के बारे में ठीक से नहीं जानते–समझते, वे मानते है। कि हममें कोई भूत–प्रेत घुस गया है। दरअसल, कोई भूत–प्रेत नहीं घुसता। वह केवल भ्रांति की बात है। इस भ्रांति से दूर रहिए।

● भूत–प्रेत होता ही नहीं है। जो नहीं मानते, उनको कोई नहीं सताता। जो लोग मानते हैं, उनको यह सताता है। केवल मन का भूत है, मन की कल्पना है, भ्रम है, और कुछ नहीं। यह मानसिक रोग है, इसकी चिकित्सा कराओ।

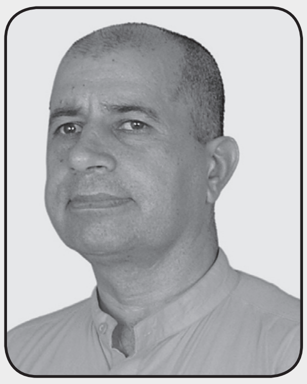

● **भूत लगना केवल मनोवैज्ञानिक–रोग की स्थिति है। जिसमें व्यक्ति रोग से ग्रस्त होकर विक्षिप्त–अवस्था में कुछ का कुछ बोलने लगता है।**

● भूत–प्रेत उतारने वाले को ओझा कहते हैं। गुजरात में भुआ कहते हैं। ओझा या भुआ उस पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं और उसको कहते हैं अब तुम ठीक हो गए और वो भी मान लेता है, कि हाँ मैं ठीक हो गया। उसका भूत–प्रेत सब निकल गया। **भूत–प्रेत कुछ नहीं होता। इसलिये इसके चक्कर में नहीं आना।**

● मैं पिछले बीस वर्षों से यह चैलेंज करता आ रहा हूँ अगर कोई भूत–प्रेत उतारने या डालने वाला व्यक्ति यह दावा करता है, कि मैं भूत–प्रेत डाल सकता हूँ, निकाल सकता हूँ तो मेरे शरीर में एक भूत–प्रेत डाल दो। मैं सामने से ऑफर करता हूँ उसको मेरी तरफ से एक लाख रुपये इनाम। और जो नुकसान होगा, वो मेरा। उसके ऊपर कोई आपत्ति नहीं। कोर्ट में चलेंगे, मजिस्ट्रेट साहब के सामने कॉन्ट्रेक्ट साईन करेंगे। दो गवाह उनके, दो गवाह हमारे। चाहो तो प्रयोग कर लो। अगर मेरे शरीर में भूत डाल दे, तो लाख रुपए इनाम। और अगर नहीं डाल सका तो पांच लाख रुपये जुर्माना भरो। वन–वे ट्रैफिक नहीं चलेगा। बीस साल हो गए मुझे चैलेन्ज करते हुए। अब तक तो मेरे सामने कोई नहीं आया है, जो भूत–प्रेत डाल दे। इसलिए व्यर्थ की बात है, इसको छोड़ दीजिए।

● जैसे एक आत्मा शरीरधारी है। वो अपनी आत्मा दूसरे शरीर में प्रविष्ट करा दे, यह संभव नहीं। सवाल है कि एक शरीरधारी जीवात्मा दूसरे जीवित शरीर में अपनी आत्मा को डालेगा कि मृत शरीर में? मृत में डालेगा न, जीवित में तो नहीं डालेगा। चलो एक बात तो कैंसिल हुई कि वो जीवित शरीर में तो नहीं घुसेगा। अब मृत शरीर में डाले तो इसमें कौन सी समझदारी है? मृत शरीर तो पहले ही गल–सड़ जायेगा। आप कहो कि सड़ा–गला नहीं है, अभी–अभी बिल्कुल ताजा मरा है। बेचारे को ढूँढ़ना पड़ेगा कि कोई ताजा मरा हुआ शरीर मिले तो वह अपनी आत्मा को उसमें

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

।। ओ३म्।।

जीव की उत्पत्ति चार प्रकार से होती है

● खुशहाल चन्द्र आर्य

जितने भी जीव संसार में दिखाई देते हैं उन सबकी उत्पत्ति चार किस्म से होती है। वे हैं (1) जरायुज, (2) अण्डज, (3) उद्भिज, (4) स्वेदज। इन चारों किस्म की उत्पत्ति का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

1. **जरायुज :** इसका तात्पर्य है, जेर से उत्पन्न होने वाली योनियाँ। इन विधि से उत्पन्न होने वाला बच्चा एक पतली झिल्ली से ढका हुआ रहता है। बच्चा पैदा होने के बाद, बच्चे को झल्ली से निकाल लिया जाता है और बच्चे को नहला–धुला कर सुला दिया जाता है और झिल्ली को कहीं जमीन में गाढ़ दिया जाता है। इस पतली झिल्ली को जेर कहते हैं, इसीलिए इस विधि से उत्पन्न होने को जरायुज कहते हैं। इस विधि से उत्पन्न होने वाली योनि मुख्य रूप से मनुष्य है, बाकी अधिकतर पशु योनि ही है जैसे गाय, भैंस, घोड़ा, गधा व हाथी आदि। इस विधि में अधिकतर एक बच्चा ही उत्पन्न होता है। किसी–किसी के दो या तीन बच्चे भी हो जाते हैं। कुछ पशु ऐसे भी हैं जिनके चार, पाँच या और भी अधिक बच्चे एक ही समय में उत्पन्न हो जाते हैं जैसे कुत्ता, बिल्ली आदि। ये सब योनियाँ जरायुज योनियाँ कहलाती हैं। इस विधि में नर–मादा का संयोग होना आवश्यक है।

2. **अण्डज :** यह पैदा होने की दूसरी विधि है। इसमें माँ के पेट से बच्चे अण्डे के रूप में बाहर आते हैं। ये अधिकतर एक से अधिक होते हैं। अण्डे उत्पन्न होने के कुछ दिनों बाद माँ अपने अण्डों के ऊपर बैठकर सेक करती है तब अण्डों से बच्चे बाहर आते हैं। यह सब काम माँ कोई एक घोंसला बना कर करती है और उस घोंसले में बच्चों को रख कर पालती है। माँ बाहर से चुग्गा–पानी अपनी चोंच में भरकर लाती है और बच्चों को खिलाती–पिलाती है। जब बच्चे कुछ बड़े हो जाते हैं तब वे स्वयं उड़ने लगते हैं और अपने खाने–पीने का प्रबन्ध स्वयं करने लग जाते हैं। इस विधि से उत्पन्न होने वाली योनियों में पक्षी ही अधिक आते हैं जैसे चिड़िया, कबूतर, कौवा, चील आदि। यह विधि भी नर–मादा के संयोग से होती है।

3. **उद्भिज :** इस प्रणाली से जीव जमीन से उगता है। इनके उत्पन्न होने के कई तरीके हैं जिनमें तीन तरीके मुख्य हैं। पहले तरीके में फल का बीज जमीन में बोया जाता है जैसे आम, निम्बू, नीम, पीपल बड़े वृक्षों के रूप में, छोटे रूप में तोरी, घीया, पेठा के भी बीज बोये जाते हैं। अनाज स्वयं जमीन में बोया जाता है जिसका पूरा पौधा होने पर एक अनाज के दाने से हजारों दाने हो जाते हैं। जैसे गेहूँ, चना, मकई, जवार, बाजरा आदि। इस पद्धति से पहले बीज को जमीन में बोया जाता है। कुछ दिनों बाद वह बीज जमीन को फाड़कर एक छोटे पौधे के रूप में बाहर आता है, इसीलिए इस पद्धति को उद्भिज पद्धति कहा गया है यानी जमीन को फाड़कर निकलना। फिर यह पौधा शनैः शनैः बढ़ता जाता है और जिसकी जितनी सीमा होती है उतना बढ़कर फिर फूल–फल देना आरम्भ कर देता है। बहुत से फलों में उसका ही बीज निकलता है, वही बोया जाता है और फिर पहले की भाँति ही बड़ा पेड़ बन जाता है। दूसरा तरीका है पहले बीज बोकर उससे पौधा बनता है। वह पौधा पहली जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह बोया जाता है और वहीं फूलता–फलता है। इसमें मुख्य रूप से धान ही होता है जिसका प्रयोग उपमा के रूप में लड़की के विवाह में भी किया जाता है। जैसे धान एक जगह पैदा होता है और दूसरी जगह फूलता–फलता है। इसी प्रकार लड़की भी पिता के घर पैदा होती है और विवाह के बाद पति के घर फूलती–फलती है। तीसरी विधि है, फल ही बीज के रूप में बोया जाता है। जैसे आलू, प्याज, मूली, गाजर आदि। इनके बीज अलग नहीं होते, इसलिए फल को ही जमीन में गाड़ दिया जाता है और उसी के जमीन के अन्दर अनेकों फल लग जाते हैं। इस विधि में नर–मादा की आवश्यकता नहीं होती। इसमें बीज ही नर का काम करता है और जमीन मादा का काम करती है। यहाँ यह बात लिखनी बहुत जरूरी है कि आज का वैज्ञानिक कहता है कि प्राचीनकाल में लोग पेड़–पौधों में प्राण यानी आत्मा नहीं मानते थे। इनको चेतन नहीं जड़ ही समझा जाता था। उनका कहना है कि जगदीश चन्द्र बसु ने ही उनका परीक्षण करके यह सिद्ध कर दिया कि पेड़–पौधों में भी प्राण हैं। ये भी मनुष्य की भाँति ही श्वांस लेते हैं और मनुष्य की भाँति ही दुःख–सुख का अनुभव करते हैं और इनमें भी आत्मा है। परन्तु हमारे ऋषि–मुनियों ने बहुत पहले ही जान लिया था कि पेड़–पौधों में प्राण हैं तभी इनको भी एक योनि माना है। महर्षि दयानन्द ने भी अपने अमर ग्रन्थ ''सत्यार्थ प्रकाश'' में पेड़–पौधों में भी प्राण होते हैं और इनकी भी एक अलग योनि माना है। इसीलिए जीव की उत्पत्ति के चार किस्मों में उद्भिज भी एक विधि मानी है जिसमें पेड़–पौधे ही आते हैं। पेड़–पौधों में भी प्राण हैं यह बात महर्षि दयानन्द ने वेदों से जानी है, इससे यह भी सिद्ध हो गया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और सब सत्य विधाओं का पुस्तक है और पूर्ण ज्ञान का भण्डार है।

4. **स्वेदज :** यह योनि पसीना के मैल से तथा गन्दगी से उत्पन्न होती है। जैसे जुएँ जो पसीना के मैल से सिर में पड़ जाती हैं तथा गन्दी नालियों में कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब स्वदेज विधि से उत्पन्न होने वाली योनि कहलाती हैं।

180 महात्मा गान्धी रोड
(दो तल्ला) कोलकाता–700007

☞ पृष्ठ 04 का शेष

''अनादि काल से ...

ताकि उन सब साधनों के माध्यम से आत्मा की चैतन्यता प्रकट हो सके—ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों द्वारा सब सत्य विद्या को जान सकें, देख सकें, सुन सकें, बोल सके और स्पर्श का अनुभव कर सकें।

इस सम्बन्ध में मस्तिष्क शास्त्र का जन्मदाता 'गाँल' लिखता है कि 'मेरी राय में एक ही निरवयव' वस्तु है जो देखती, सुनती, स्पर्श करती और प्रेम, विचार तथा स्मरण आदि करती है, पर यह अपने कार्य करने के लिये मस्तिष्क में अनेक भौतिक साधन चाहती है, इसने वही बात कह दी जो उपनिषदकारों ने कही है—

'एषहि दृष्टास्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।'

अर्थात् देखने वाला, छूने वाला, सुनने वाला, चखने वाला, मनन करने–करने वाला और कार्य करने वाला विज्ञानी आत्मा है।'

मु. पो. मुरारई, जि. वीरभूम
(प. बंगाल) 731219
मो. 8158078011

☞ पृष्ठ 05 का शेष

उत्कृष्ट शङ्का ...

डाले। उसमें डालने से उसको लाभ क्या है? कोई लाभ नहीं है, और इतनी क्षमता भी नहीं है कि वह अपनी आत्मा मृत शरीर में से निकाल कर वापस अपने शरीर में डाल दे। अगर वो योगी अपनी आत्मा को निकालकर उस मृत शरीर में डालेगा, तो उसका अपना शरीर मर जायेगा। और एक बार निकल गया, तो वापस आने की कला उसको आती नहीं। यह परकाया प्रवेश आदि की बातें सब कहानियाँ हैं। इनमें विश्वास नहीं करना चाहिये। न इससे कोई लाभ है। ऐसी इतिहास में पता नहीं कितनी कहानियाँ आती हैं। भूत–प्रेत की कहानियों की कमी नहीं है। टेलीविजन में भी बहुत से हॉरर सीरियल भूत–प्रेतों के आते हैं। वो सब झूठ बात है। संसार में सच्चा–झूठा दोनों चलता है।

● मरने के बाद आत्मा इधर–उधर नहीं भटकती। मृत्यु के बाद जीवात्मा ईश्वर के नियंत्रण में चला जाता है। अब उसके कर्मानुसार अगला जन्म कहाँ देना है, ईश्वर उसकी व्यवस्था करेगा। मान लीजिये एक व्यक्ति की भारत में मृत्यु हुई। अगला जन्म उसको देना है जापान में। तो भारत से लेकर जापान तक की यात्रा वह जीवात्मा स्वयं नहीं करेगा, बल्कि ईश्वर उसको लेकर जाएगा। मरने के बाद जीवात्मा को तो होश ही नहीं होता है। अगला जन्म कहाँ लेना है– उसके वश की बात थोड़े ही है। फल देने वाला न्यायाधीश 'ईश्वर' है। ईश्वर बताएगा कि उसको कहाँ जाना है। और वो खुद पहुँचाता है। ईश्वर यमदूत नहीं रखता, असिस्टेंट नहीं रखता। वो अपना काम खुद करता है, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है। ईश्वर उसको पहुँचाता है, जहाँ पहुँचाना है।

● **एक शरीर की आत्मा दूसरे शरीर में नहीं जाती है।** हाँ, अगर आत्मा ने एक बार शरीर छोड़ दिया तो फिर छोड़ दिया। आत्मा वापस उसमें नहीं जा सकती। उसको वापस जाने का तरीका नहीं मालूम। जो आत्मा शरीर छोड़ दे, उसको वापस दोबारा उस शरीर में डाल दे, ईश्वर ऐसा काम नहीं करता है। अगर एक आत्मा ने एक शरीर छोड़ दिया तो दूसरे जन्म में फिर उसका नया शरीर बनेगा, उस शरीर में ही जायेगी।

दर्शनयोग महाविद्यालय
रोजड़वन, गुजरात

अथर्ववेद में स्वर्ग

● महात्मा चैतन्यमुनि

वैयाकरण शास्त्रानुसार 'स्वर्ण' शब्द, 'स्वर्' उपपद में 'गम्लृ–गतौ' धातु से 'ड प्रकरणेऽन्येष्वपि दृश्यते। अ. 3–248 वार्तिकसूत्र से 'ड' प्रत्यय के योग से बनता है। गति के ज्ञान–गमन–प्राप्ति तीन अर्थ होते हैं। 'स्व' सुख का अनुभव होना, सुख में प्रविष्ट होना, सुख की प्राप्ति होना ही स्वर्ग अर्थात् सुख है। इसी प्रकार 'स्वर्गलोक' का अर्थ है। 'लोकृ दर्शने' धातु से लोक शब्द बनता है। जिसका अर्थ है 'स्थान' है। जहाँ स्वर्ग प्राप्त होता है– सुख प्राप्त होता है वह स्वर्गलोक है। स्थान से यहाँ किसी विशेष स्थान से नहीं है बल्कि जिस अवस्था में हमें सुख प्राप्त हो वही स्वर्ग है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के 'स्वमन्तव्यामन्तव्य–प्रकाश' में लिखते हैं– 'स्वर्ग'– नाम सुख–विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है। 'नरक'– जो दुःख–विशेष भोग ओर सामग्री को प्राप्त होता है। 'सत्यार्थप्रकाश के नौवें समुल्लास में वे मुक्ति के प्रसंग में स्वर्ग–नरक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं– 'मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्व ज्ञानी होकर उसकी सब सन्निहित पदार्थों का भान अर्थात् यथावत् होता है। यही सुखविशेष 'स्वर्ग' और विषयतृष्णा में फँसकर दुःखविशेष भोग करना 'नरक' कहाता है। 'स्व' सुख का नाम है, **'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः, 'अतो विपरीती दुःखभोगो (यस्मिन् स) नरक इति'** जो सांसारिक सुख है वह –'सामान्य स्वर्ग', और जो परमेश्वर की प्रति से आनन्द है, वही 'विशेष स्वर्ग' कहाता है। 'यहां पर महर्षि जी ने स्वर्ग को भी दो भागों में बाँटकर बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक विचार प्रस्तुत करके संसार को उपकृत किया है।

लोक शब्द का अर्थ है 'जो देखा जाए, जो जाना जाए'। इसके भाव इस प्रकार से समझ सकते हैं– स्थान, अवस्था या काल, सुख–विशेष की अवस्था, प्रकाश की अवस्था आदि। लोक शब्द का व्यवहार बहुत से प्रसंगों में किया जाता है, जैसे– कन्या पितृलोक को छोड़कर पतिलोक को जा रही है आदि। जैसे स्वर्ग लोक कोई स्थान विशेष नहीं है उसी प्रकार नरक भी कोई स्थान विशेष नहीं है। स्वर्ग का अर्थ सुख है इसलिए नरक का अर्थ दुःख हुआ क्योंकि नरक शब्द स्वर्ग का विपरार्थक है। रामायण के सुप्रसिद्ध टीकाकार गोबिन्दराज ने नरक का अर्थ इस प्रकार किया है– **अत्र नरकः शब्देन दुःखं लक्ष्यते**– यहाँ नरक शब्द का अर्थ दुःख है। महर्षि यास्कजी ने निरुक्त में लिखा है– **नरकंन्यरकं नीचैर्गमनम् इति वा।** (1–3–11) अर्थात् दुख, अधःपतन या अवनति का नाम नरक है। नरक का सीधा सा अर्थ है– नीचे जाना, पतन का लोक, निरुक्त में भी कहा है– नीचे जाना, सुख का अभाव। निरुक्त में (2–14) भी स्वर्ग के पर्यायवाची नाम, द्यौ तथा सुकृतस्य–लोक दिए है। मीमांसा में (6–1–1) 'स्वर्ग' सुख विशेष को माना गया है। स्वर्ग शब्द से स्थान–विशेष व वस्तु विशेष का ग्रहण मीमांसा को स्वीकार्य नहीं है। वेद के अनेक मंत्रों में द्युलोक, ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक, मोक्ष तथा सुकृतलोक आदि की चर्चा की गई है। अथर्ववेद में स्वर्ग प्राप्ति के साधन इस प्रकार बताए हैं–

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात्कामदुधा म एषा।

इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः।। अथर्ववेद. 11–1–28)

हम ज्ञान का संचय करें, निरोग बनें, वीर्य रक्षण करने वाले हों, वानस्पतिक भोजन करें, घर में कामदुधा धेनु रखें, ज्ञानियों को लोकहित के कार्यों के लिए धन दें और पालनात्मक प्रवृत्ति वाले बनें। अथर्ववेद के 12वें काण्ड का तीसरे सूक्त का देवता 'स्वर्ग' है। इसमें गृहस्थ को स्वर्ग बनाने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं– पुरुष शक्तिशाली हो, उसे अनुकूल जीवन साथी मिले, गृहस्थ में संयम व व्यवस्था में चलें जिससे ज्ञान, वीर्य और तेज में वृद्धि हो। केवल सन्तानोत्पत्ति हेतु ही पति–पत्नी संसर्ग करें। पति–पत्नी दोनों मिलकर कार्य करें। गर्भ में ही सन्तान को अच्छे संस्कार दें ताकि सन्तान का निर्माण ठीक प्रकार से हो सके। सात्विक भोजन करके नीरोगता को प्राप्त करें। हमारे घरों में यज्ञशीलता बनी रहे। श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ने की दिशा में चलें, यज्ञशेष को ही खाने वाले बनें तथा प्रभु की उपासना करें। अपने ऐश्वर्य का धर्मकार्यों के लिए ही प्रयोग करें। उत्तम प्रजा को पैदा करके हम देश को उन्नत करें? ध्रुवता धारण करें, तपस्वी व सत्यवादी बनें, रोग न हो इस प्रकार की व्यवस्था करें। उत्तम स्थान प्राप्त करने के लिए पति–पत्नी उपासना करें, ज्ञानवान् बनें तथा संयमी बनें। धन–सम्पन्न बनें, प्रभु भक्त बनें, दिव्य गुण अपनाएँ, पति–पत्नी तथा परिवार से प्रेम–व्यवहार हो। कभी भी एक–दूसरे पर क्रोध न करें, ऋतु–अनुकूल भोजन करें, देव–वृत्ति के बनें तथा यज्ञशील बनें। पति–पत्नी एक दूसरे से छिपकर कुछ न ग्रहण करें, मधुर वचन बोलें, सदा सुकृत ही करें, हमारे जीवनमें पाप और पतन न हो। द्वेष–भाव न हो। द्वेष–भाव न रखें, सदा सात्विक वृत्ति बनाए रखें, प्रत्याहार का स्वभाव बनाएँ....

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।

तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत्पुरुषान्पशूंश्च।।

यत्रा सुहार्दः सुकृतो यदन्ति विहाय रोगं तन्व स्वायाः।

अश्लोणा अङ्गरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्।। (अथर्व 03–28–5, 6–120–3)

जब बुद्धि मन शासन करने वाली होती है तब–लोगों के हृदय उत्तम होते हैं, उनके कर्म उत्तम होते हैं शरीर नीरोग होते हैं, पुरुषों के प्रति इनका व्यवहार मधुर होता है, मांसाहार के प्रति अरूचि के कारण पशुओं का संहार नहीं करती। इस प्रकार यामिनी बुद्धि घर को स्वर्ग बना देती है। स्वर्ग तुल्य गृह वह है जहाँ–सबके हृदय पवित्र हैं, सब यज्ञादि उत्तम कर्मों को करने वाले हैं, सबके शरीर नीरोग हैं, अंग अविकृत हैं, स्वभाव सरल व अकुटिल है, माता–पिता का आदर है और सन्तानों का शिक्षण–दीक्षण ठीक है।

अथर्ववेद के चौथे काण्ड के चौतीसवें सूक्त में ब्रहमौदन के स्वरूप की चर्चा करने के बाद इस ज्ञान–भोजन द्वारा स्वर्ग–लोक की कामना कही गई है– (अथर्व04–34–5 से 7) हम भोजन करने वाले बनें। इस ज्ञान–ग्रहणरूप तप से ही उस यज्ञ की भावना का हममें उदय होता है जो हमारी सब शक्तियों का विस्तार करती हैं। ज्ञान–भोजन करने वाले लोग भौतिक सुखों से ऊपर उठकर प्राणसाधना करते हुए पवित्र व दीप्त जीवन बिताते हैं। ये लोग कामाग्नि से सन्तप्त नहीं होते। इनका घर स्वर्ग–लोक सा बन जाता है। ज्ञानप्रधान जीवन वाला व्यक्ति दरिद्र नहीं होता, वह प्रभु का उपासक होता है, दैवी–सम्पत्ति को प्राप्त करता है तथा विनीत ज्ञानियों के सम्पर्क में हर्ष का अनुभव करता है। ब्रह्मौदन का सेवन करने वाला ज्ञानप्रधान व्यक्ति सदा शक्तिशाली बना रहता है, उत्तम शरीर रथ वाला होता हुआ कभी मार्ग–भ्रष्ट नहीं होता तथा उत्तम बातों का परिग्रह करता हुआ द्युलोक से भी ऊपर उठकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। ज्ञानयज्ञ हमें लक्ष्य–प्राप्ति में सर्वाधिक सहायक है। यह शक्तिप्रसारक यज्ञ हमें स्वर्ग में ले जाता है। इस यज्ञ के लिए वातावरण को उपयुक्त बनाने के लिए हम घरों में छोटी–छोटी पुष्करणियों का आयोजन करें। उनमें खिले कमल गृह को लक्ष्मी–सम्पन्न बनाएँगे। इनका केसर नीरोगता का कारण बनता हुआ आनन्द का संचार करेगा। हमारे घरों में 'घृत मधु, पवित्र जल, दूध व दही' की कभी कमी न हो। घर में चारों ओर कमलों के छोटे–छोटे तालाब हों। घर में दूध, उदक व दधि से पूर्ण घड़े मंगल के प्रतीक हैं। ये घर में माधुर्य का सेचन करने वाले हैं।

अथर्ववेद में ही कहा गया है (अथर्व. 12–3–6, 16,17) सात्विक अन्नों के सेवन के परिणामस्वरूप हमारे मस्तिष्क में शरीर दीप्त व शक्त हों। हमारे घरों में बड़ों का आदर व छोटों का प्रेमपूर्वक निर्माण हो। हमारा घर यज्ञशील पुरुषों का वह श्रेष्ठ स्वर्ग बने, जिसमें ज्योति व माधुर्य का व्यापन हो। इस स्वर्ग में हम दीर्घकाल तक पुत्रों के साथ, प्रभुस्मरणपूर्वक निवास करें। हम यज्ञों को अपनाएँगे तो दिव्यगुणों को प्राप्त करते हुए स्वर्ग को प्राप्त करने वाले होंगे। हम घर को स्वर्ग बना पाएँ। पत्नी व पुत्रों के साथ सदा प्रेम से रहें। पति–पत्नी की अनुकूलता हो। अलक्ष्मी व कृपणता का हमारे यहाँ निवास न हो। अथर्ववेद(11–1–7,8,17,18,28,30,31,35 से 37) में कहा गया है कि हम शक्ति का वर्णन का वर्धन करते हुए उन्नत होने का ध्यान करें। यह शक्ति का रक्षण ही हमें उन्नत करके 'स्वर्गलोक' में स्थिति वाला करता है। इस पृथिवी पर ध्यान व यज्ञादि उत्तम कर्मों को करते हुए हम शुभ लोक को प्राप्त करें। पवित्र जीवन वाली स्त्रियाँ कर्मों में व्याप्त रहें– खाली समय को ज्ञान–प्राप्ति में लगाएँ। इस जीवन में ये उत्तम सन्तानों व उत्तम पशुओं को शुद्ध बनाएँ, मलरक्षण द्वारा पवित्र जीवन जीने वाले हों। सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखें, वासनाओं का विध्वसं करके यज्ञशील हों। क्रियामय जीवन वाले होकर ज्ञान–प्राप्ति में लगाने वाले हों। यही मार्ग है स्वर्ग प्राप्ति करने का। स्वर्ग का मार्ग यह है कि– हम ज्ञान का संचय करें, नीरोग बनें, वीर्य रक्षण करने वाले हों, वानस्पतिक भोजन करें, घर में कामदुधा धेनु रखें, ज्ञानियों को लोकहित के कार्यों के लिए धन दें और पालनात्मक वृत्ति वाले हों। हम श्रमशील, ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करने वाले व सोम का सम्पादन करने वाले बनें। प्रकाश व सुख के मार्ग पर आरूढ़ हों। उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त करके स्वर्ग–तुल्य इस जीवन को बिताने के बाद प्रभु को प्राप्त करें– मुक्त हो जाएँ। प्रभु वृषभ–स्वर्ग है। वासनाओं को विनष्ट करने वाले ज्ञानरुचि–पुरुषों को प्राप्त होते हैं। पुण्यकर्मों वाले लोगों के लोक में प्रभु का निवास है। वहाँ सज्जन–संग में ही हम पति–पत्नी का पवित्रीकरण होता है। हम ज्ञान का संचय करें, ज्ञान के अनुसार कर्मों को करने वाले बनें। देवयान मार्गों पर चलें। इन पुण्यकर्मों के द्वारा 'पृथ्वीलोक से ऊपर अन्तरिक्ष को, अन्तरिक्ष के ऊपर द्युलोक को तथा द्युलोक से ऊपर उठकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करें।' ज्ञान प्राप्त करके हम सुकृतों द्वारा प्रकाशमय लोक को विजय करें। प्रकाशमय लोक से आनन्दमय लोक में पहुंचें।

इसी क्रम में आगे कहा कि (अथर्व. 18–4–1 से 7,10,11,13,14)

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

दाम्पत्य का आधार वैदिक वर्ण व्यव्यस्था

● सूरजमल त्यागी

दाम्पत्य जीवन का प्रारम्भिक कारण रूप सौन्दर्य होता है। जिस का मूल आधार प्रेम है। परन्तु रूप सौन्दर्य तो प्रेम का ढक्कन है। वास्तव में रुप और प्रेम में इतना अन्तर है जितना खटाई और खाँड में होता है खटाई और खाँड मिलने से सरसता उत्पन्न होती है। खटाई –खाकर जीवन नहीं चलता। प्रेम–माधुर्य के लिए सहयोग,त्याग, समर्पण,क्षमा तथा गुण–कर्म–स्वभाव का संयोग अनिवार्य है। रुप–सौन्दर्य क्षणिक सुख तो उत्पन्न करता है किन्तु उस में प्रेम–माधुर्य का अभाव रहता है।

वैदिक दर्शन में दाम्पत्य जीवन, प्रेम–माधुर्य और दाम्पत्य, सुख के लिए, गुण–कर्म–स्वभाव की अनिवार्यता है। पति और पत्नी का चयन करने की स्वतन्त्रता है। जिसमें माता–पिता सहयोग करते हैं। कन्या की स्वीकृति को प्रथम मान्यता होती है। किसी परिस्थितिजन्य, विवशता से, लोक लाज, जुगाड़ से पति–पत्नी बनकर लम्बे समय तक भी जुड़े तो रह सकते हैं। परन्तु गुण–कर्म–स्वभाव योग्यता के अभाव में लम्बे समय तक जुड़े रहना उसका एक गुण हो सकता है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मकान में सुविधा जनक दरवाजे, खिडकियाँ, रोशनदान, झरोखे भी होने चाहिए। मकान उपयुक्त सुविधाओं से युक्त हो। मकान में सीलन टूटन से घुटन न हों। सूरज की रोशनी, चाँद की रोशनी भी आती हो। मकान सैकड़ों वर्षो से खड़ा है। परन्तु अपने आश्रितों का दम–घोटता रहा और स्वास्थ्यप्रद, सुखद नहीं रहा है। यह मकान की कौन सी प्रशंसनीय बात है। चयन की स्वतन्त्रता,परिपक्व अवस्था में प्रेम, माधुर्य के साथ सुखद जीवन जीने, परिवार, समाज, राष्ट्र के निर्माण में योगदान देने के लिए वैदिक विवाह की वर्ण व्यवस्था का विधान किया गया है।

रूप सौन्दर्य पर आधारित प्रेम विवाह माधुर्ययुक्त सुखद नहीं होते। सौन्दर्य का आवेश आयु के साथ ढ़ल जाता है। आर्थिक सुविधाएं किसी कारण से समाप्त भी हो जाती हैं। विवाह की औपचारिक प्रतिज्ञाएँ, जरा–जरा से मन–मुटाव से, कैदी की हथकड़ी के समान लगने लगती हैं। स्वतन्त्र चयन में, गलती ओर धोखा–धड़ी किसी भी पक्ष से हो सकती है। अति–स्वतन्त्रता भी उच्छृंखला में बदल जाती है। आँखों पर गान्धारी की काली पट्टी बँध जाती है। रूप–सौन्दर्य का नशा, उतर जाता है। तब भगाए या भागें, अथवा अलग हो जाएं ही परिणाम होता है। सफल, सुखद, मधुर दाम्पत्य के लिए वैदिक वर्ण व्यवस्था एक मात्र उपाय है वर और वधु को अपने समान वर्ण के, अपने ही गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार, स्वयं चयन करना चाहिए। अप्राप्य की प्राप्ति, के लिए परिवार, समाज, राष्ट्र के निर्माण के लिए, रूप सौन्दर्य के ढक्कन से आगे बढ़कर, व्रतपति, व्रत पत्नी बनना चाहिए। एक कुशल बढ़ई अपने लकड़ी के टुकड़ों के जोड़ को जैसे मिला देता है। वैसे ही अपने त्याग, सहयोग, संकल्प और समर्पण के कौशल से एक दूसरे में विलीन, विलुप्त कर देना चाहिए। वेदानुसार वर्णव्यवस्था से ब्राह्मणी कुलीन युवती रूप सौन्दर्य को ही नहीं देखती। विद्या, गुण उस का व्रत होता है। काले, कलूटे, भदरंग तथा गुणवान ऋषि अष्टावक्र में, विद्याव्यसन का गुण दिखाई दिया। रूप की उपेक्षा कर, कोई ब्राह्मणी रूप हीन, धन हीन, एक तपस्वी, विद्या व्रतपति को अपना इष्टदेव स्वीकार कर लेती है। क्षत्रिय कन्या रूप को नहीं देखती। वह आन, बान, शान और तलवार के धनी का वरण करती है। राजपूत वीरागंना हाड़ी रानी ने पति की शान में अपना मुँड स्वंय काट कर भेंट कर दिया था। वैश्य युवती, श्रीमान् दान–मान के धनी, सेठ (श्रेष्ठ महाजन) की उपासना करती है। वह किसी कन्जूस और कृपण के रूप को नहीं देखती । जगत् में शान–मान–दान और श्रम की पूजा–उपासना होती है।

एक स्वाभाविक प्रश्न है कि क्या कोई समझदार कन्या, दुर्बल युवक को अपना पति चुनेगी! क्या वह ऐसे पुरूष के बच्चों की माँ बनना पसन्द करेगी, जो एक थप्पड में गिर पड़े। कोई भी पति जो शरीर से बलवान और बुद्धि से हीन हो और जरा–जरा से मत–भेद पर बल का सहारा लेता हो? उससे घर में अशान्ति–कलह–भय व्याप्त होता है। क्षत्रिय प्रबल हो, परन्तु गुणवान भी हो, तभी वह न्यायकारी होगा। शरीर से कमजोर और विद्या से भरपूर, तपस्वी को देवता मान कर उपासना की जा सकती है। चयन प्रक्रिया के समय युवती, युवक से एक प्रश्न पूछती है। 'भवान्! आपमें कौन–सा विशेष गुण है? अर्थात् ज्ञान–मान–दान है, जिससे मैं आपको स्वीकार कर सकूँ। अब प्रत्येक शादी के इच्छुक युवकों को किसी वर्ण की योग्यता, विवाह से पूर्व सिद्ध करनी, कितनी अनिवार्य हो जाती हैं? अतः प्रत्येक युवक–युवती को इस प्रश्न का उत्तर खोजना है कि हमने दाम्पत्य के लिए कौन–सी योग्यता प्राप्त कर ली है?

अतः वैदिक वर्ण–व्यवस्था, युवकों, गृहस्थों समाज की कायाकल्प करने का वेदविदित उपाय है। वर्ण व्यवस्था साधारण को असाधारण तथा विशिष्ट बना देती है। मानव का चहुँमुखी कायाकल्प हो जाता है। जिसका आधाार शान, मान, बल, धन और श्रम है। वर्तमान में कर्मचारी प्रथम,द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ श्रेणी के हैं। वर्ण व्यवस्था कर्मणा है, जन्मना नहीं है गुणवाचक है, जाति वाचक नहीं है। समझ से सम्यक गति करने वाला समुदाय ही समाज है। जिसका मूलाधार स्तम्भ–वैदिक दाम्पत्य ही है।

(पूर्व प्राचार्य)
जड़ौदा हाउस – कोटा

☞ पृष्ठ 07 का शेष

अथर्ववेद में स्वर्ग

हम रक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्त होते हुए वेदवाणी के स्वाध्याय से प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करें। प्रभुप्रेरणा को प्राप्त करने वाला व्यक्ति यज्ञशील बनता है। यह सदा पुण्यकर्मा लोगों के लोक में निवास करने वाला होता है। देव यज्ञमय जीवन वाले होते हुए घरों को स्वर्गमय बनाते हैं। हम ऋत के मार्ग को देखें। इसी मार्ग से पुण्यशील लोग चलते हैं। इस मार्ग में गुणों का आदान करने वाले आदित्य मधु का भक्षण करते हैं। यही तृतीय नाक लोक है। हमें इसी का आश्रय करना चाहिए। हम पूर्ण–स्वस्थ, पुण्यकर्मा, गुणों व ज्ञानों का आदान प्रदान करने वाले बनकर प्रभु की उपासना करते हुए अपने घरों को स्वर्ग बनाएँ। ये घर नीरोगता के आधार हों। हमारे लिए अन्न–रस का दोहन करने वाले हों। 'यज्ञ' त्रिलोकी का धारण करता है। यज्ञों के होने पर यह सब अन्तरिक्ष व द्युलोक इस पृथिवी को दीप्तिमय स्वर्गतुल्य बनाते हैं। यज्ञशील पुरुष के लिए सब काम्य पदार्थों को आप्त कराते हैं– **'एष वोऽस्त्विष्टिकामधुक्'**। यज्ञ हमारे जीवन को स्वर्गमय बनाए। यज्ञशील पुरुष के लिए यह दिशाएँ इष्ट काम्य पदार्थों को प्राप्त कराएँ। सब इष्टों से परिपूर्ण होता हुआ भी यह यजमान अभिमान व क्रोध से शून्य होता है। हम माता, पिता, आचार्य आदि तीर्थों से अज्ञान को तैर कर यज्ञशील बने। इस यज्ञशीलता से हमारे लिए सब ओर प्रकाश ही प्रकाश होता है। इस यज्ञशीलता से हम मेधावाल बनकर शक्तिशाली बनते हैं। आचार्य, पिता व माता रूप अग्नियाँ यज्ञशील पुरुष को स्वर्ग प्राप्त कराते हैं। यहां यज्ञशील पुरुष देवों के साथ ज्ञानचर्चाओं में आनन्द अनुभव करते हैं। प्रभु हमें सब ओर से शान्त व दीप्त जीवन वाला बनाएँ। हमारे जीवनों में प्रभु हर 'आचार्य, पिता व माता' के रूप में स्थापित होते हैं। प्रभु की आज्ञा के अनुसार यज्ञ करने पर हमें प्रभु की प्राप्ति होती है। हम प्रभु के आदेश के अनुसार ही प्राजापत्य यज्ञ करने वाले हों। यज्ञाग्नि में अपने को परिपक्व करके हम विषय–वासनाओं से दूर रहें। हम सकाम यज्ञों से स्वर्ग को प्राप्त करके उन्हें निष्कामता से करते हुए प्रभु प्राप्त करने वाले हों, यही देवयान मार्ग है।

पंचौदनः पंचधा वि क्रमतामाकंमस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि।
ईजानानां सकुतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व।।
अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोति दुर्गाण्येषः।
पंचौदनो बह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयति।।
अजोऽस्य स्वर्गो ऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन्
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम्।।
अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पंचौदनो निर्ऋतिं बाधमानः।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम।। (अथर्व 09–5–8,9,16,18)

हम पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञानप्राप्ति के कार्य में लगे रहें। यज्ञशील व पुण्यकर्मा बनकर ब्रह्मलोक में विचरण करने वाले बनें। हम गति द्वारा बुराईयों को दूर करने वाले पुण्यकर्मा लोगों के लोक में आरूढ़ हों प्रार्थनामय जीवन वाले बनकर शरभ के समान शत्रुओं को शीर्ण करते हुए दुर्गो को लाँघ जाएं। ज्ञान–प्राप्ति में लगकर अपने को प्रभु के प्रति अर्पित करें। इसी अर्पण करने वाले को प्रभु आनन्दविभोर कर देत हैं। हम इस जीवन में पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान–प्राप्ति में प्रवृत्त हों। जीव 'अज' है, 'स्वर्ग' है। उसे गतिशील बनाकर बुराई को अपने से परे फेंक कर प्रकाश प्राप्त करना है। उसके साथ ज्ञानचर्चा करते हुए अन्य लोग भी प्रभु को जान पाएँ। इस 'अज' की एक ही कामना है कि 'मैं उस प्रकाशमय पवित्र प्रभु को प्राप्त कर पाऊँ।' इस प्रकार अपने को ज्ञानाग्नि में परिपक्व करें। गतिशीलता द्वारा बुराईयों को परे फैंकने वाले बनें। पतन के मार्ग को अपने से दूर रखें। इससे हमारा जीवन स्वर्गोपम बनेगा और हम ब्रह्मलोक को प्राप्त करने वाले बनेंगे।

–महादेव, सुन्दरनगर–174401,
हि.प्र.

सतोगुणी, सावधान!

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

"सतोगुणी पाठको, सावधान!"

"आपने हमें सतोगुणी क्यों कहा?"

"तो क्या रजोगुणी कहूँ, तमोगुणी कहूँ!"

"आपको हम में कौन सा सतोगुण दिखाई दिया?"

"कमाल है, आपको अपनी प्रशंसा भी नहीं पचती। अरे भाई, बात का जबाब दो। क्या आप ईश्वर आराधना नहीं करते, योग और ध्यान नहीं करते, सामाजिक कार्यों में रुचि नहीं रखते? क्या ये सतोगुण के लक्षण नहीं हैं?"

"माना कि हम सतोगुणी हैं पर आपने 'सावधान' शब्द का प्रयोग क्यों किया, क्या हम किसी खतरे में थे?

"जिसका घर अंधेरे से घिरा हो, चारों ओर चोरों का खतरा हो, क्या उसको सावधान करना कोई जुल्म् है?"

"ज्यादा चतुराई मत दिखाइये, कहाँ है अंधेरा, कहाँ है चोरों का खतरा?"

"यदि आपको खतरे नजर न आएँ तो यह तुम्हारी नजरों का दोष है। क्या आपके जीवन में अज्ञान रूपी अंधेरा नहीं छाया हुआ है, क्या आपको काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी चोरों का खतरा नहीं है?

"तो क्या तमोगुण और रजोगुण से खतरा नहीं है?"

"है पर कम है, तमोगुण में खतरा नहीं, रजोगुण में कुछ ज्यादा और सतोगुण में तो खतरा ही खतरा।"

"सिद्धान्त विरुद्ध बात मत बोलिए। अपनी बात को स्पष्ट ढंग से समझाइये।"

"ठीक है भाई, आप यों समझ लीजिए, एक पेड़ है और तीन आदमी। पहला आदमी पेड़ की जड़ में ही कीचड़ लथपथ पड़ा हुआ है। दूसरा आदमी थोड़ा सा पेड़ पर चढ़ने की कोशिश कर रहा है और तीसरा आदमी पेड़ के शिखर पर पहुँच चुका है। अब बताओ, सबसे अधिक गिरने का डर किसको है?"

"सबसे ऊपर वाले को।"

"अब सुनिये काम की बात। यह संसार एक वृक्ष है। इस संसार रूपी वृक्ष में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो राग–द्वेष, घृणा आदि के कीचड़ से लथपथ होकर जड़ पर ही पड़े हुए हैं, जो पहले से ही गिरे हुए हैं, वे और कितना नीचे गिरेंगे? दूसरे प्रकार के वे व्यक्ति हैं जो सक्रिय होकर थोड़ा बहुत संसार से ऊपर उठ चुके हैं, आध्यात्मिक परिष्कार कर चुके हैं, ऐसे व्यक्ति संसार रूपी वृक्ष के मध्य भाग तक पहुँचे हैं, तीसरे प्रकार के वे व्यक्ति हैं जो ईश्वर उपासना, साधना, शुभ कर्म आदि के प्रति समर्पित हैं और आध्यात्मिकता के चरम शिखर तक पहुँच चुके हैं। अब बताइये, सबसे अधिक खतरा किसको है?"

"चरम शिखर पर पहुँचने वाले सतोगुण ी को।"

"अब आये न रास्ते पर।"

"बड़ी अजीब बात है, सतोगुणी के गिरने का खतरा और तमोगुणी एक दम निश्चिन्त।"

"अरे भाई, तुम्हें कैसे समझाऊँ! जो गूंगा है, उसे क्या खतरा? खतरा होता है बोलने वाले को कि कहीं मैं अच्छा बोलने के बजाय बुरा न बोल जाऊँ। अच्छाई है सतोगुण और बुराई है तमोगुण। पर संसार में ऐसा देखने में आता है कि बुराई ही हम पर हावी रहती है।"

"उदाहरण देकर समझाइये।"

समझाता हूँ। आपने दस साल तक अपने घर में एक कुत्ता पाला। अब आप उसको बाहर निकालना चाहते हैं। आप उसको बहुत दूर रास्ते में छोड़कर आयेंगे पर वह आपसे पहले घर पहुँच जायेगा। वह आपसे भौंकते हुए प्रश्न करेगा कि आपने मुझे दस साल तक घर में बड़े प्यार से रखा, अब क्यों निकाल रहे हैं? फिर आपने कुत्ते को छोड़कर गाय पालनी चाही। आप घर में गाय ले आए पर ज्यों ही गर्दन की रस्सी ढीली हुई, गाय भाग जायेगी। कितनी विचित्र बात है आप जिसको पास नहीं रखना चाहते हैं वह रहना चाहता है और जिसको आप पास रखना चाहते हैं वह नहीं रहना चाहता। यही जीवन का रहस्य है। तमोगुण कुत्ता है, बुराई है, निकालना भी चाहो तो भी चिपटने का प्रयास करेगी। सतोगुण गाय है, भलाई है, हृदय–भवन में रखना भी चाहो तो भी कहाँ टिक पाती है? हम सतोगुणी बनने के लिए न जाने कितने संकल्प करते हैं पर कहाँ टिक पाते हैं वे संकल्प?"

"आपकी ये सारी बातें वाणी विलास हैं, कल्पना मात्र हैं। यदि इनमें कोई सच्चाई है, तो दीजिए शास्त्रीय प्रमाण।"

"अरे भाई, देता हूँ शास्त्रीय प्रमाण भी। आपने वह वेद मंत्र तो पढ़ा ही होगा, जिसमें कहा गया है, 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय' बताइये, क्या है यह असत्? यह असत ही तो तमोगुण है और सत है सतोगुण। इसी प्रकार तमस और मृत्यु ज्योति तथा अमृतत्व के प्रतीक कहे जा सकते हैं।"

"पर ऐसा कौन सा प्रमाण है जिसके आधार पर सतोगुण को श्रेष्ठ कहा जाए?"

"आपने गीता तो पढ़ी होगी। उसमें कहा गया है– 'सत्वस्थाः ऊर्ध्व गच्छन्ति' अर्थात् सतोगुणी ऊपरी लोक में जाते हैं। अभिप्राय यह है कि वे मर कर श्रेष्ठ योनियों में जन्म लेते हैं।"

"वे स्वर्ग में जाँय या नरक में? कोई फर्क नहीं पड़ता पर हम तो जन्म–मरण के फेर में नहीं पड़ेंगे न।"

"नहीं, भोले बाबा जी, ऐसी बात नहीं है। गीता के ही आधार पर यदि सतोगुण ी ऊर्ध्व लोक में जाते हैं तो रजोगुणी मध्यलोक (मनुष्य लोक) में तथा तमोगुण ी अधोलोक (निकृष्ट योनियाँ) में प्रस्थान करते हैं।"

"फिर तो स्वर्गलोक में जाने वालों के ठाठ आ गए। वे तो हमेशा वहीं डटे रहेंगे और सुखों का उपभोग करते रहेंगे।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। स्वर्ग में रहने की भी निश्चित अवधि होती है। प्रमाण दूँ; "ते भुक्त्वा स्वर्ग लोकं विशालम् क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशन्ति" अर्थात् लोकं का उपभोग करके फिर मनुष्य लोक में प्रवेश करते हैं। और एक बात और सुन लो, सुख विशेष को ही स्वर्ग कहते हैं। जहाँ सुख है वहीं स्वर्ग है।"

"आपने तो स्वर्ग की बड़ी तारीफ की थी पर यह स्वर्ग भी किसी काम का नहीं। नाम स्वर्ग, पर स्थायी सुख का नामोनिशान नहीं। क्या करेंगे हम ऐसे स्वर्ग का?"

"सुनो भाई, आपने सोने की हथकड़ी पहनी, पर है तो वह हथकड़ी ही बन्धन का कारण। तोता सोने के पिंजड़े में अंगूर खाता है पर है तो पिंजड़ा ही। स्वर्ग भी ऐसा ही है, इसमें बन्धन भी है और दुःख भी।

"इसका मतलब यह हुआ कि हम न तो पूरी तरह सतोगुण पर विश्वास कर सकते हैं और न स्वर्ग पर।"

"आपका यह कहना भी ठीक है। माना कि सतोगुण में हजार अच्छाइयाँ हों पर इसमें भी अहंकार बना रहता है। मैं दूसरों से श्रेष्ठ दीखूँ, यह प्रवृत्ति तो बनी ही रहती है।"

"तो क्या सतोगुण से भी कोई महान वस्तु है?"

"हाँ है और वह है मोक्ष कामना, दुःख निवृत्ति, त्रिगुणात्मक प्रकृति से ऊपर उठना तथा आनन्दमय ईश्वर के आनन्द में लीन होना।"

"यह कैसे संभव है?"

"निरन्तर साधना, स्वाध्याय और सेवाभाव से। पहले इन्द्रियों को मन के हवाले कर दो, मन को बुद्धि के हवाले, बुद्धि को आत्मा के हवाले और फिर आत्मा को भी परमात्मा के हवाले। फिर देखो, आनन्द ही आनन्द। ईश्वर के बारे में कहा गया है, 'रसो वै सः' अर्थात् परमात्मा आनन्दमय है। कुछ समझे सतोगुणी महाराज!"

"अब तो आप मेरा मजाक उड़ा रहे हैं। अब मैं सतोगुणी नहीं मुमुक्षु हूँ।"

"ठीक है मुमुक्षु महाराज, पर एक बात बताइये, मैं आपको एक पाठक मान कर आपके प्रश्नों के उत्तर देता रहा, पर आप हैं कौन?"

"मैं हूँ आपकी बहिन, आपकी सहोदरा और मेरा नाम है कुमारी जिज्ञासा।"

230, आर्यवानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो. 9639149995

गुरुकुल हरिपुर (ओडिशा) 10 परिवार वैदिक धर्म में दीक्षित हुए

ओडिशा का कोरापुट जिला गो हत्या एवं गो मांस खाने के नाम से तथा गरीबी के कारण प्रसिद्ध है। जिस कारण विभिन्न मत–सम्प्रदाय वाले थोड़े प्रलोभन देकर अपने–अपने मत सम्प्रदाय के विस्तार में लगे हुये हैं। लोग गो माता की महत्ता को समझें, मानवीय कर्तव्यों तथा आर्य समाज के सिद्धान्तों से परिचित होवें, इसी पावन भावना से गुरुकुल हरिपुर, जुनानी ओडिशा के तत्वाधान में नवरंगपुर जिला के नुआगुड़ा एवं कोरापुट जिला के बाइलगुड़ा व अण्डारगुड़ा को केन्द्र बनाकर दान सहायता शिविर एवं प्रचार कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम में विभिन्न गांवों के दो हजार महानुभावों को आर्य समाज एवं वेद से परिचय कराया गया, 10 परिवारों को वैदिक धर्म में दीक्षित कराया गया, सैंकड़ों महानुभावों को यज्ञ में आहुति प्रदान कर मांस, मंदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करने का व्रत दिलाया गया, तीनों केन्द्रों में यज्ञ एवं वेद प्रवचन कार्यक्रम के उपरान्त छः सौ निर्धन परिवारों को 25–25 किलो चावल एवं एक–एक साड़ी दान स्वरूप प्रदान की गई।

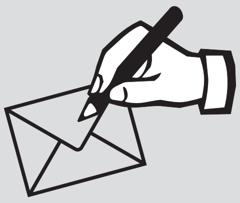

पत्र/कविता

कन्या-भ्रूण हत्या - एक अपराध व महापाप

माता–पिता की हिंसक सोच तथा लालची डाक्टरों के गठबंधन ने गर्भ में आई बेटी का जीवन तेजी से समाप्त करना शुरू कर दिया है। विभिन्न विद्यालयों व गांवों में जाकर यह समझाये जाने की आवश्यकता है कि भ्रूणहत्या के क्षेत्र में देश की स्थिति की स्थिति संवेदनशील हो गयी है। पिथौरागढ़ मात्र 766 बेटियाँ ही एक हजार बेटों पर हैं। उत्तराखण्ड के समस्त 13 जनपदों में कन्या–भ्रूण हत्या चरम पर है। इसी तरह हरियाण ा, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश सहित 27 राज्यों में बेटियों की संख्या चित्ताजनक रूप से कम है। इस समस्या के समाधान के लिए नई पीढ़ी को ही आगे आना है। डा. बड़े दु:ख की बात है। कि धर्म के ठेकेदार चुप हैं। वे पूछते हैं क्या बेटी के बिना बेटा सम्भव है? फिर महापाप क्यों करते हो?

चौ. तारा सिंह, हरीनगर, मेरठ–250002
मो. 09719110801, 8439552082

****

समय की पुकार और आर्यों का कर्त्तव्य

आर्य समाज के भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न एठता है कि यह आशामय है या अन्धकारमय। आर्य समाज की बाह्य स्थिति देखकर तो आशा की किरण जगती है, पर आन्तरिक स्थिति देखकर निराशा होती है। किसी नवागन्तुक को आन्तरिक स्थिति देखकर घोर निराशा होती है और पीछे हट जाता है।

हमारा बाह्य रुप सुन्दर व आकर्षक है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलनों में लाखों की उपस्थिति और सुन्दर व्यवस्था और सारगर्भित भाषणों की गंगा का प्रवाह देख कर मन हर्षित होता है और आर्य समाज के उद्देश्य पूर्ति का आभास होता है, महर्षि का ऋण उतारने का विश्वास जगता है।

पर इस सबकी पृष्ठभूमि में हम कहाँ खड़े हैं, यह विचारने पर निराशामयी आह ही अन्तर से निकलती है। अपने को समझदार व उत्तरदायी मानने वाले आर्य समाजी कहते हैं कि हम तो शान्ति प्रिय आर्य हैं। झगड़ों व कलह से हमें कोई सरोकार नहीं है। पर वास्तव में वे कहीं न कहीं कलह में उलझे होते हैं, और वहाँ से सत्यासत्य के निर्णय के समय पर परे हट जाते हैं। अपना सत्य पक्ष भी दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत नहीं कर पाते, परिणामतः असत्य पक्ष हावी हो जाता है।

ये शान्ति प्रिय सज्जन भूल जाते हैं कि महर्षि भी यदि ऐसी कायरतामयी शान्ति को अपनाते, तो भारत में क्रान्ति कैसे जगती? महर्षि के द्वारा जगाई हुई क्रान्ति के बल पर ही तो हम गर्व से सिर ऊँचा किये आर्य समाज का गुणगान कर रहे हैं और गौरवान्वित हो रहे हैं और उसी क्रान्तिमयी नीति को हम ''कलह'' का नाम देकर पीछे हट रहे हैं।

याद रखें आर्य समाज के क्रान्तिकारी स्वरूप ने ही राष्ट्र को जगाया था और भविष्य में जगायेगा भी और राष्ट्र की रक्षा में हमें सशक्त बनायेगा। आर्यो! महर्षि के इस क्रान्तिकारी सन्देश को याद रखो, क्रान्ति का आह्वान लेकर क्षेत्र में आओ, कूद पड़ो। राष्ट्र की समस्याएँ तुम ही सुलझा सकोगे, आर्य समाज के सिवा किसी में यह दम नहीं, साहस नहीं। महर्षि की अन्तरात्मा तुम से आस लगाए है।

डॉ. कु. पुष्पावती,
डी. 45/129, नई बस्ती, रामापुरा
वाराणसी– 221010 (उ.प्र.)

****

हंसराज थे राजहंस

हंसराज थे राजहंस और सर्व त्यागी परम हंस।
धर्म की राह में आए संकट, झेल गए वह हंस हंस।।

परमेश्वर के परम उपासक, धीर वीर गम्भीर थे।
अज्ञान नाश करने के लिए वह ज्ञान की शमशीर थे।।

बरस पड़े वह विद्या वारिधि, बन छम–छम कर नीर थे।
सूर्य रश्मियां बन के अविद्या का था किया अंधकार ध्वंस।।

दयानन्द ने वैदिक ज्योति, जग में आन जगाई थी।
इससे द्योतित विश्व को करने आर्य समाज बनाई थी।।

लेकर निकले वही मशाल, गुरूदत्त, लाजपत, हंसराज।
जगा दिया सारे भारत को, किया पाखंडों का विध्वंस।।

डी.ए.वी. कॉलेज से निकले, अनेकों वीर स्वतंत्र सेनानी।
जिन्होंने देश धर्म जाति की, खातिर मर मिटने की ठानी।

घर–घर नगर–नगर में गूंजी विद्रोही स्वराज्य की वाणी।
भगत सिंह चल पड़े मिटाने, धरती से अंग्रेज कंस।।

आजीवन सेवाव्रत लेकर धर्मक्षेत्र में आए थे।
द्वन्द्वातीत वितृष्ण बने, सच्चे योगी कहलाए थे।।

लोभ, मोह, अहंकार को जीता, जनक से विदेह कहाए थे।
स्वच्छ पवित्र उज्ज्जव थे जैसे मानसरोवर का हो हंस।।

आज है देश पुकार रहा, इक बार पुनः वह आ जाएं।
भ्रष्ट हो गए इस समाज को, फिर सुसमाज बना जाएं।

फिर से ऋषि दयानन्द के उपदेशों को दोहरा जाएं
नैया देश की निकले भंवर से जिसमें आज है गई फंस।।

सुभाषचन्द्र गुप्ता
149, ए. जी. सी. आर. एन्क्लेव, दिल्ली.92

राजा हरिश्चन्द्र आजीवन सत्यमार्ग

राजा हरिश्चन्द्र आजीवन सत्यमार्ग का अवलम्बन किया लेकिन उन्हें राजपद से वंचित होकर डोम के यहाँ नौकर बनना पड़ा और यहाँ तक कि उन्हें अपने इकलौते पुत्र की असामयिक मौत देखनी पड़ी। श्रीराम जीवन मैं हर तरह की मर्यादा का पालन करने के कारण मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। उन्हें भी राज्याभिषेक के बदले बनवास मिला, पिता की मृत्यु हुई, पत्नी के अपहरण का वियोग दु:ख सहना पड़ा; रावण के साथ भीषण युद्ध करना पड़ा और इस तरह निरन्तर दुख सहते हुए अन्त में नदी में डूब कर आत्म हत्या कर ली, जिसे आस्थावान लोग गोलोक–गमन या स्वर्गारोहण कहते हैं। युधिष्ठिर भी धर्म के मार्ग पर आजीवन चलकर धर्मराज कहलाए। उन्हें भी जीवन–भर भाईयों के साथ दर–दर एवं वन–वन की ठोकरें खानी पड़ीं और अन्त में बर्फ में गलकर अस्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त हुए। वर्तमान में भी हम देखते हैं कि सत्य, धर्म, न्याय के मार्ग पर चलने वाले को दुख एवं अभाव की जहालत भरी ज़िन्दगी मिलती है और इसके विपरीत अधर्म, असत्य एवं अन्याय के मार्ग पर चलने वाले सुख एवं संपन्नता का जीवन जीतें है। यदि इसे पूर्व जन्म का फल माना जाय, तो प्रश्न उठता है कि यदि पूर्व जन्म में कर्म बुरे थे तो, अच्छे कर्म का संस्कार किस (कु)कर्म का फल माना जाय, जबकि कहा जाता है कि अच्छे कर्म से ही अच्छा संस्कार बनता है। यदि वर्त्तमान का सुसंस्कार पूर्व जन्म के सुकर्म का फल माना जाय, तो वर्तमान का दुख एवं अभाव किसका फल है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर के आगे शक्तिहीन होने के कारण हम उनको न्यायकारी मान लेते हैं। कृपया विद्वान इस पर आर्य जगत में विचार दें।

लेखक ने अपना नाम और पता नहीं दिया।
फिर एक सकारात्मक चिंतन होगा
इस आशा से पाठकों के आगे प्रस्तुत हैं
–सम्पादक

एक भुक्तभोगी पाठक

****

मैं महर्षि दयानन्द सरस्वती का ऋणी हूं

● भारतेन्दु सूद

आज जब कि हमारे देश की सरकार ''बेटी बचाओ आन्दोलन'' चलाने पर मजबूर है, कारण विकृत मानसिकता और सामाजिक परिस्थितियों के होते हुये माता के गर्भ में पल रही बेटियों को जन्म लेने से पूर्व ही मार दिया जाता है। यही नहीं हमारे देश में लाखों बेटियों को उनके माता–पिता अपने ऊपर एक बोझ समझते हैं, ऐसे में मैं अगर गर्व से कहता हूँ कि मैं तीन पुत्रियों का पिता हूँ जो कि मेरे लिए वरदान हैं व सर्वोत्तम पूंजी हैं, तो इस का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती व उनके द्वारा सन् 1875 में स्थापित आर्य समाज को है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने समय में कैंसर रोग के समान भयानक रूप से समाज को कमजोर करने वाली सभी सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था। महर्षि ने उस समय जब कि भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, स्त्री–पुरुषों की समानता, स्त्रियों की शिक्षा व उनके परिवार के संचालन में उनकी प्रमुख भूमिका को सही सन्दर्भ में प्रस्तुत कर क्रान्ति की थी। उन दिनों अधिकतर महिलायें अपने घरों में भी गुलामों की भांति रहा करती थीं। महिलाओं और दलितों को वेदों और दूसरे शास्त्रों के अध्ययन से रोकने वाली अन्धविश्वासों से परिपूर्ण व्यवस्था को स्वामी जी ने अपने पैरों तले रौंद डाला और घोषणा की कि सभी स्त्रियों व दलितों को शिक्षा व वेदों के पढ़ने–पढ़ाने का ब्राह्मणों के समान ही अधिकार है। उन्होंने कहा वेद सब के लिये हैं, सभी को वेदाध्ययन का अधिकार है जन्म–जाति, रंग भेद और भौगोलिक सीमाएं इस में बाधा नहीं हो सकते।

उनका कहना था कि शिक्षा स्त्रियों की सभी समस्याओं के निवारण के लिए रामबाण औषधि है। हमारा समाज इस अशिक्षा के कारण ही दुर्बल हुआ है। आज महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्वर्ग सिधारने के 132 वर्ष बाद यह सिद्ध हो चुका है कि उनके इस सम्बन्ध में कहे गये वचन सत्य थे। उनसे प्रेरणा लेकर उनके भक्तों ने उनकी असामयिक मृत्यु के कुछ ही समय बाद पंजाब में प्रथम महिला विद्यालय 'आर्य कन्या महाविद्यालय, जालन्धर' की सन् 1889 में स्थापना कर उसे पूरा किया। यही नहीं, उनके अनुयायियों द्वारा एक हजार से अधिक डी.ए.वी. संस्थायें एवं गुरुकुल देश के हर कोने में खोले जो शिक्षा के प्रचार व प्रसार के कार्य में लगे हुये हैं और यही सभी शिक्षा संस्थायें उनके सच्चे स्मारक हैं।

मैंने उनसे सीखा कि माता व पिता को अपनी पुत्रियों का ध्यान रखने वाला सच्चा सहृदय मित्र व संरक्षक होना चाहिये और यह भी जाना कि हम अपनी पुत्रियों को सबसे बड़ा यदि कोई उपहार दे सकते हैं तो वह शिक्षा एवं अच्छे संस्कार ही हैं। इस कार्य के लिए माता–पिता से अच्छा कोई विद्यालय नहीं हो सकता। वह सन्तान अतीव भाग्यशाली होती है जिसके अभिभावक माता–पिता धार्मिक हों व शिक्षा एवं संस्कारों से अलंकृत व सुभूषित हों।

आज यदि मैं घर में बैठा हुआ या फिर यात्रा करता हुआ भी ईश्वर से जुड़ा हुआ रहता हूँ तो यह भी स्वामी दयानन्द जी का ही प्रभाव है जिन्होंने बताया कि ईश्वर निराकार, अजन्मा, सर्वव्यापक और सर्वान्तरयामी है। उसको कहीं बाहर ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं है अपितु वह हमारे अन्दर ही है बात केवल अन्दर झांकने की है। हम उपासना द्वारा ईश्वर से जुड़ सकते हैं। चाहे मुझ पर कितनी बड़ी मुसीबत आन पड़े या बहुत बड़ा प्रलोभन हो, मैं किसी भी हालत में न किसी चमत्कारी बाबा के पास जाता हूँ न जाऊँगा, यह महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षा का ही प्रभाव है।

एक अन्य लाभ जो मुझे उनकी शिक्षाओं से हुआ है, वह यह कि सत्य को सर्वोपरि स्वीकार करना और तर्क से सत्य की पहचान करना। इससे मैं सभी प्रकार के अन्ध विश्वासों से मुक्त हो गया। मुझे किसी धर्मगुरु या ज्योतिषी के पास किसी अच्छे दिन या मुहूर्त पूछने जाने की आवश्यकता नहीं है। मेरे लिए सभी दिन एक समान हैं व सभी दिन अच्छे दिन हैं और मेरे जीवन का वर्तमान समय मेरे लिए सबसे अच्छा समय है। जब कोई व्यक्ति सत्य को सर्वोपरि मान कर उसे अपने जीवन में धारण करता है तो वह स्वतः निर्भय व निडर हो जाता है। यह सत्य ही जीवन में प्रसन्नता, सुख व आनन्द का कारण है।

अन्त में मैंने उनसे यह जाना कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं। मनुष्य विद्या अध्ययन कर व शुभ। गुणों को धारण कर ही ब्राह्मण बनता है जिसमें उसके जन्म व कुल आदि का महत्व नहीं होता। इस ज्ञान ने मुझे सभी प्रकार के पक्षपात व अन्यायपूर्ण व्यवहारों से बचाया है व मुझे सबल व सक्षम भी बनाया है।

सम्पादक, वैदिक थाट्स
चण्डीगढ़।

वैदिक ज्ञान-विज्ञान संस्थान ने मनाया स्थापना दिवस

वैदिक ज्ञान विज्ञान संस्थान का प्रथम स्थापना दिवस एवं नवसंवत्सर पर्व बड़े ही हर्षोल्लास के साथ आर्य समाज फ्रीगंज के प्रागण में आयोजित किया गया। इस पावन अवसर पर यज्ञ, भजन, प्रवचन एवं वैदिक साहित्य का विमोचन किया गया।

पवित्र वेद मन्त्रों के द्वारा पावन यज्ञ का अयोजन पं. विश्वेन्द्रार्य के द्वारा किया गया। भजन कु. बबलि आर्या, श्रीमती मिथिलेश छावड़ा, श्रीमती कान्ता बंसल एवं महर्षि दयानन्द अनाथालय की बच्चियों द्वारा प्रस्तुत किये गये। प्रवचन पं. अशोक शास्त्री द्वारा किया गया जिसमें उन्होंने नवसंवत्सर एवं वैदिक ज्ञान–विज्ञान के विषय में अपने विचार रखे।

कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि महान समाज सेवी श्री सुशील कुमार विद्यार्थी जी के द्वारा (वैदिक भक्ति भजनावलि) पुस्तक का विमोचन किया गया। कार्यक्रम में श्री के.बी. शर्मा, वीरेन्द्र कुमार कनवर, अर्जुनदेव महाजन, डा. विद्यासागर, ब्रजराज परमार, अल्केश चौपड़ा आदि गणमान्य उपस्थित हुए।

चमनवाटिका अब चलेगा अन्तर्राष्ट्रीय कन्या गुरुकुल

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के प्राचार्य आचार्य देवव्रत से प्राप्त पत्र के अनुसार गुरुकुल कुरुक्षेत्र की तर्ज पर इस वर्ष बेटियों के लिए अंग्रेज़ी माध्यम का स्कूल श्री राजेन्द्रनाथ जी ने अपने अंग्रेज़ी माध्यम के "चमन वाटिका इन्टरनैशनल स्कूल" को परिवर्तित करके चमनवाटिका अन्तर्राष्ट्रीय कन्या गुरुकुल अम्बाला चण्डीगढ हाईवे, अम्बाला सिटी में आरम्भ किया है जिसमें सभी प्रकार की शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं खेलकूद सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध हैं। इस गुरुकुल में छात्रावास, भोजनालय एवं विद्यालय भवन वातानुकूलित हैं। इस गुरुकुल में कक्षा 4 से 11 तक प्रवेश होगा।

इच्छुक महानुभाव आचार्य देवव्रत, जी से मो. 09410381 42, 9896111400, 9215226571 पर संपर्क कर सकते है।

मौत ज़िन्दगी से कितनी बेहतर है

जिन्दा थे तो किसी ने पास भी बैठाया नहीं।
अब खुद मेरे चारों ओर बैठे हैं।।
पहले कभी किसी ने मेरा हाल भी न पूछा।
अब सभी आंसू बहाये जा रहे हैं।।
पहले कभी एक रुमाल भी भेंट न किया।
अब शाल और दुशाले ओढ़ाए जा रहे हैं।
सब को पता है कि अब इसके काम के नहीं।
मगर फिर भी दुनियादारी दिखाये जा रहे हैं।।
कभी किसी ने एक वक्त का खाना नहीं खिलाया।
अब देसी घी मेरे मुँह में डाले जा रहे है।।
जिन्दगी में एक कदम भी साथ न चल सके।
अब फूलों से सजाकर कन्धा दे रहे हैं।।
आज का पता चला कि मौत जिन्दगी से कितनी बेहतर है।
हम तो बेवजह ही जिन्दगी की चाहत किये जा रहे हैं।।

कृष्णमोहन गोयल
113–बाजार मोड़, अमरोहा–244221

यह कविता उस का दृष्टिकोण हो सकता है हम तो उस ज़िन्दगी को गले लगाने की बात करते हैं जो परमात्मा ने मृत्यु से मुक्ति हेतु प्रदान की है– सम्पादक

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 06-07/5/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

आयोजन के निश्चय के पीछे मौसम तो एक कारण था ही, पर इससे बड़ा कारण था महात्मा हंसराज का वह प्रवास जब वे 1938 के कुम्भ के बाद स्वास्थ्य–लाभ के लिए लगभग छह महीने सलोगड़ा द्धसोलनऋ में रहे थे। मान्य प्रधानजी ने घोषणा की कि सलोगड़ा में आर्य प्रादेशिक सभा की भूमि और समाज है। उस भूमि पर महात्मा हंसराज के नाम पर एक 'प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र' बनाया जाए जिससे इस क्षेत्रा के निवासियों को 'स्वास्थ्य सेवा' का लाभ होगा। आर्यों के इस वार्षिक संगम में देश के प्रत्येक राज्य से क्षेत्रीय निदेशक, प्राचार्य, बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। डी.ए.वी. प्रबंधक समिति के 17 पदाधिकारी द्धयह एक रिकार्ड संख्या हैऋ इस आयोजन में अपनी भागीदारी देने के लिए आए।

मान्य प्रधानजी के नेतृत्व में पिछले कुछ वर्षों से आरम्भ की गई परम्परा को निभाते हुए इस वर्ष महात्मा हंसराज दिवस पर शिक्षा के क्षेत्रा में उल्लेखनीय उपलब्धियों और योगदान के लिए प्रो. द्धडॉ.ऋ जसपाल सिंह संधू, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा प्रो. द्धडॉ.ऋ परमजीत सिंह जसवाल, उप–कुलपति, राजीव गांधी नेशनल लॉ यूनीवर्सिटी, पटियाला, को डी.ए.वी. के विशिष्ट सम्मान से अलंत किया गया।

इस अवसर पर आर्य संन्यासियों एवं आर्य विद्वानों में–महात्मा चैतन्यमुनि (सुन्दर नगर– हिमाचल), आचार्या डॉ. अन्नपूर्णा (देहरादून–उत्तराखण्ड), साध्वी डॉ. उत्तमा उज्ज्वला यति (अजमेर–राजस्थान), स्वामी सर्वदानन्द (हिसार–हरियाणा), माता सत्याप्रिया यति (सुन्दर नगर–हिमाचल), डॉ. प्रियंवदा वेदभारती (नजीबाबाद–उत्तरप्रदेश), पंडित रामस्वरूप (अजमेर–राजस्थान), प्रो. सुन्दरलाल कथूरिया (दिल्ली), डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार (कुरुक्षेत्रा–हरियाणा) को वेद एवं आर्य समाज के प्रचार–प्रसार के लिए सम्मानित किया गया।

प्रतिवर्ष की भाँति शैक्षिक गुणवत्ता तथा संस्थाओं के बहुमुखी विकास हेतु डॉ. बी.बी. शर्मा (डी.ए.वी. कॉलेज, जालन्धर) श्री एस.के. वर्मा (पी.जी. डी.ए.वी. सीनियर सैकेण्डरी पब्लिक स्कूल, वेस्ट पटेल नगर, दिल्ली) (श्रीमती सतवंत कौर भुल्लर) (आर. बी. डी.ए.वी. सीनियर सैकेण्डरी पब्लिक स्कूल, भटिण्डा) (श्रीमती साधना बख्शी (डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, पुण्डरी, हरियाणा) को सम्मानित किया गया।

आर्य समाज की विचारधारा के प्रचार–प्रसार में उल्लेखनीय कार्य के लिए श्री सिकन्दर हयात खाँ (डी.ए.वी. सीनियर सैकेण्डरी पब्लिक स्कूल, धर्मशाला) को 'आर्य सेवक सम्मान' से सम्मानित किया गया। मान्य प्रधानजी ने घोषणा की कि आर्य समाज की गतिविधियों तथा इसके प्रचार–प्रसार में निश्चित मापदण्डों के आधार पर यह विशेष सम्मान प्रतिवर्ष एक प्राचार्य को दिया जाएगा।
प्रातःकाल एक विशेष यज्ञ का अनुष्ठान किया गया जिसमें मुख्य यजमान मान्य श्री पूनम सूरी, श्रीमती मणि सूरीजी के साथ डी.ए.वी. के पदाधिकारी उपस्थित हुए। संन्यासीवृंद, आर्य विद्वानों ने यज्ञ में आहुतियाँ प्रदान कीं तथा मुख्य यजमान दम्पति को आशीर्वाद दिया।

इस अवसर पर डी.ए.वी. कॉलेज फॉर गर्ल्स, यमुना नगर की 400 छात्राओं द्वारा एक नृत्य नाटिका 'परम्परा यह त्याग की' की हृदयग्राही प्रस्तुति दी गई।

नृत्य और संगीत के मधुर–समिश्रण द्वारा यह दर्शाने का सफल प्रयोग किया गया कि महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में अज्ञान, कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरों व अंधविश्वासों से संघर्ष करते हुए सर्वस्व त्याग की जिस परम्परा का सूत्रापात किया, उसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए, उनके अधूरे कार्यों को पूर्ण करने तथा देश–सेवा, समाजसेवा तथा ज्ञान–प्रसार में कैसे महात्मा हंसराज ने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। श्री कशिश देवगन के निर्देशन में दी गई इस प्रस्तुति के संवाद तथा गीत श्री अजय ठाकुर ने लिखे थे।

इस महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. सुषमा आर्य के नेतृत्व में तीस से अधिक प्राध्यापिकाओं ने इस प्रस्तुति में अपना सक्रिय योगदान दिया। कॉलेज के फैशन डिजाइनिंग विभाग ने वेश–भूषाएं तैयार कीं, कास्मोटोलॉजी विभाग ने मेक–अप की व्यवस्था की तथा फाइन आर्ट्स विभाग ने अन्य कलात्मक सामग्री बनाकर सहयोग किया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में महात्मा चैतन्यमुनि ने डी.ए.वी. की दार्शनिक व्याख्या करते हुए सभी को आशीर्वाद दिया। डी.ए.वी. प्रबंधन के महामंत्री श्री आर.एस. शर्मा जी ने सभा का धन्यवाद किया। शान्ति–पाठ से समारोह समाप्त हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.**, डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**